महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा का मुख पत्र

वर्ष : ६० **अंक** : १६

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: श्रावण शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., **द्विवार्षिक**-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षा:,
सत्यव्रता रहितमानमलापहारा:।
संसारदु:खदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकारा:।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अगस्त द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१. असहिष्णुता : कुछ कारण और...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-१२	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. पूज्य दादा बस्तीराम जी	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१४
०५. शङ्का समाधान- ३१	डॉ. वेदपाल	१७
०६. कल्याण की देवी: शिवदेवी	रामनिवास गुणग्राहक	२०
०७. आर्यसमाज अकालियों की राह पर	प्रो. धर्मवीर	२३
०८. समर्पित पिता के समर्पित पुत्र...	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	२८
०९. संस्था समाचार		३१
१०. वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		३२
११. वेदगोष्ठी-२०१८		३३
१२. मृत्यु और जन्म के बीच की गति	जगदेवसिंह सिद्धान्ती	३५
१३. श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती	आनन्ददेव शास्त्री	४०

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com
उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

असहिष्णुता : कुछ कारण और विचार

क्षमा, सहनशीलता, सहजीविता, सहिष्णुता इत्यादि एक सभ्य और विचारशील समाज के अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। व्यक्तियों के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज़ और शिक्षा में अन्तर से उनके व्यवहार और जीवन-पद्धतियों में भेद होना स्वाभाविक है। एक परिवार में बहुधा एक-समान विचार करने वाले दुर्लभ होते हैं, पुनः समाज और देश की तो कथा ही क्या! एक प्रकार से विचार-भिन्नता के साथ सहजीविता आवश्यक मान ली गई है, परन्तु वहाँ भी देश का संविधान '**विभिन्नता में एकता**' का नारा देकर समाज और राष्ट्र को जोड़ने का प्रयास करता है। परन्तु जिस प्रकार समाज में विभिन्न विधि-विधानों और संवैधानिक नियमों व बन्धनों के बावजूद व्यक्ति अपराध करता है और दंडित होता है उसी प्रकार परस्पर सहिष्णुता के अनेक उदाहरण और नियमों के बावजूद व्यक्ति या समूह विभिन्न घटनाक्रमों और संस्कारों के कारण असहिष्णुता के कार्य कर बैठता है। इसमें विचारशक्ति की न्यूनता, व्यवस्था की निष्क्रियता, व्यक्तिगत या सामूहिक, सामाजिक, धार्मिक भावनाओं पर आघात इत्यादि अनेक कारणों से ऐसा होता है।

देश में पिछले दिनों अनेक ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनसे प्रत्यक्षतः ऐसा प्रतीत होता है कि वे 'असहिष्णुता' के कारण हुई हैं। आज झूठे-सच्चे समाचारों को मीडिया की कृपा के कारण बहुत तेज़ी से फैलाया जा सकता है। राजनीतिक और मतवादियों के सुदृढ़ हस्तक्षेप के कारण मीडिया को निष्पक्ष समझना बेमानी-सी बात हो चुकी है। प्रत्येक घटना की अपने दृष्टिकोण से व्याख्या करना और उसे प्रचारित और प्रसारित करना अब विभिन्न समूहों और दलों की नीति बन चुकी है।

असहिष्णुता की जो घटनाएँ प्रचारित की गई हैं, उनमें गो-हत्यारों या गो-तस्करों को भीड़ द्वारा पीटकर मार डालना, किन्हीं लोगों को बच्चा-चोर समझकर भीड़ (मॉबलिंचिंग) द्वारा मार डालना, विपक्षी राजनीतिक दल के व्यक्ति को मार डालना, चोरों को पकड़कर मार डालना, अन्धविश्वास के कारण 'डायन' या चुड़ैल बताकर विशेषतः महिलाओं को मार डालना इत्यादि प्रकार की अनेक घटनाएँ प्रकाश में आती रही हैं। इन घटनाओं में जो घटनाएँ असहिष्णुता के नाम पर अधिक प्रचारित हुई हैं, वे गौ-हत्यारों या गो-तस्करों को भीड़ द्वारा घेर कर मार डालने की हैं। अन्य घटनाओं को जान-बूझकर अधिक प्रचारित नहीं किया जाता चूँकि यह मामला हिन्दू बनाम मुसलमान का बनता है, अतः इसको प्रचारित करने में मुसलमान, कम्युनिस्ट, कांग्रेस तथा उनको समर्थन देने वाले बुद्धिजीवी व अन्य राजनीतिक दल बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं। इन घटनाओं को मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दुओं का षड्यन्त्र और असहिष्णुता बताकर अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत को बदनाम भी किया जाता रहा है। भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति गद्दी से जाते-जाते उस बहुसंख्यक समाज को कोसते गए, जिनके कारण वे उस पद पर पहुँचे। महबूबा मुफ्ती की पार्टी का एक सांसद 'असहिष्णुता' के कारण देश-विभाजन की धमकी दे रहा है।

ऐसी घटनाओं में कारणों पर कम और उससे होने वाले दुष्प्रचार तथा लाभ पर अधिक विचार किया जाता है। यहाँ यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि गो-हत्यारों या तस्करों को पीटने या मार देने की घटनाएँ उन क्षेत्रों में ही होती हैं जहाँ गो-हत्या पर राजकीय प्रतिबन्ध है। ऐसा भी बताया जाता है कि कई स्थानों पर ऐसे लोगों को गो-तस्कर समझकर मार दिया गया, जो गायों को वध करने हेतु नहीं ले जा रहे थे। जो मारने वाले हैं उन्हें या तो दूसरों के द्वारा असहिष्णु गो-रक्षक कहा जाता है अथवा वे गर्व से स्वयं अपने आप को गोरक्षक कहते हैं। भावनात्मक रूप से या धार्मिक रूप से गाय को संरक्षणीय मानने के कारण गौरक्षक ऐसा करते हैं; ऐसा देखा गया है। वे किसी षड्यन्त्र के तहत ऐसा नहीं

करते। इसके पीछे एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण अनेकत्र यह भी दिखाई दिया है कि गो-तस्कर अवसर पाने पर अपनी गाड़ियों से गौरक्षकों को कुचलने या हथियारों से मार डालने में भी संकोच नहीं करते हैं। कई गौरक्षक इस प्रकार भयंकर रूप से घायल या शहीद भी हुए हैं। ऐसी घटनाएँ अक्सर अखबार की सुर्खियाँ नहीं बनती हैं। हरयाणा का मेवात और उससे सटा हुआ दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान का क्षेत्र ऐसी घटनाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। मेवात से सटा अलवर का क्षेत्र गो-हत्या या तस्करी में अब प्रसिद्ध होता जा रहा है। गोरक्षकों की यह भी शिकायत रहती है कि पुलिस बहुधा उनका साथ नहीं देती है। ऐसे में परस्पर संघर्ष जैसी स्थिति भी बनती है और कोई भी पक्ष किसी को घायल कर देता है या मार सकता है।

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरयाणा इत्यादि में गोवध और उसके मांसभक्षण पर पूर्ण प्रतिबन्ध है, पुनः यह सरकार का दायित्व है कि वह प्रतिबन्धित पशुओं की तस्करी या उनकी हत्या को रोकने का पूर्ण सामर्थ्य से उपाय करे। ताकि तथाकथित गोरक्षकों को इसमें दखलन्दाजी की जरूरत ही न हो। जिस प्रकार किसी की तस्वीर बनाने या फाड़ने पर दंगे भड़क जाते हैं, धर्मग्रन्थ के एक पृष्ठ के अपमान पर लोग शस्त्रसहित सड़कों पर निकलकर तोड़-फोड़ मचा देते हैं, आरक्षण वापस लेने की झूठी खबर पर या आरक्षण पाने के लिए प्रदेश बंद होकर सम्पत्तियाँ जला दी जाती हैं तथा दैनिक जीवन को दुष्प्रभावित कर दिया जाता है, उसी प्रकार गो-हत्या या गो-तस्करी जैसे संवेदनशील धार्मिक मुद्दे पर कुछ लोगों का भड़क उठना स्वाभाविक लगता है। इसे सम्पूर्ण हिन्दू समाज की असहिष्णुता से क्यों जोड़ा जाना चाहिए?

अस्तु, कथनीय यह है कि चूँकि समाज और राष्ट्र को सम्यक् रूप से चलाने के लिए संविधान की अनुपालना आवश्यक है, अतः सभी को संविधान के अनुसार चलना चाहिए। कभी भी कानून को अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए। समाज, धर्म और राज्य के कर्णधारों को भी इस पर विचार करना चाहिए और ऐसी घटनाओं को रोकने का हर स्तर पर प्रयास करना चाहिए। अक्सर भीड़ में विवेक नहीं होता, परन्तु उनका मार्गदर्शक, धर्मगुरु और नेता यदि उनको चाहे तो पहले से ही सही मार्गदर्शन देकर विवेकशील बना सकते हैं। किसी भी रूप में निरपराध मारे जाएँ और संविधान की धज्जियाँ उड़ाई जाएँ, यह स्वीकार्य नहीं होना चाहिए। बुद्धिजीवियों, राजनीतिकों और मत-सम्प्रदायों के नेताओं को यह समझने और समझाने की आवश्यकता है कि पक्षपातपूर्ण नीति सभी मनुष्यों और देश, धर्म के लिए अत्यन्त हानिकर है। छुट-पुट घटनाओं से पूरे हिन्दू समाज को बदनाम नहीं किया जा सकता, क्योंकि हिन्दू समाज जो वैदिक धर्म का ही अंग है, प्राचीन काल से ही सहिष्णु रहा है। प्रतिपक्षी की गलतियों और अपराधों को सहकर भी उसने क्षमा-प्रदान करना सीखा हुआ है; सद्भावना, सहिष्णुता और क्षमादान उसको घुट्टी में मिलते हैं। ऐतिहासिक परम्पराओं, धार्मिक संस्कारों और सामाजिक रीतियों से उसकी सहिष्णुता और क्षमाभावना प्रतिबिम्बित होती आई हैं। प्राणिमात्र के प्रति अहिंसा की भावना से उसका धार्मिक साहित्य भरा पड़ा है। विदेशी मत-मतान्तरों के इस देश में आने और उनके शासकों द्वारा बलात् धर्मपरिवर्तन करने, मतभिन्नता रखने वालों का क्रूरता से वध करने से पूर्व यह देश विभिन्न विचारधाराओं और अनेक मत-मतान्तरों के साथ सहिष्णुतापूर्वक ही रह रहा था। जैन, बौद्ध, चार्वाक, शैव, वैष्णव इत्यादि मतों की अनेक संस्थाएँ यहाँ परस्पर सहिष्णु-भाव से पल्लवित-पुष्पित होती रही थीं। इनमें धार्मिक मत-भिन्नता के कारण कभी रक्तपात नहीं हुआ, क्योंकि इनका मूलभाव परस्पर सौजन्य और वार्तालाप-शास्त्रार्थ ही था। वेद-विरोधी और नास्तिकता के प्रखर प्रचारक चार्वाक के मत का संरक्षण भी हिन्दू-सनातनी ग्रन्थ '**सर्वदर्शनसंग्रह**' में किया गया है।

आधुनिक युग में भी देखें, तो पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल इत्यादि की हत्या के बदले

में आर्यसमाज ने कभी रक्तपात की सीख नहीं दी। महात्मा गांधी द्वारा आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द को असहिष्णु कहने और स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे अब्दुल रशीद को अपना भाई बताने पर भी आर्यसमाज ने गांधीजी के विरुद्ध द्वेष-भाव नहीं रखा। हाँ, वैचारिक रूप से उनके एतत् संबन्धी आक्षेपों का सप्रमाण उत्तर दिया गया। आश्चर्य है कि अब्दुल रशीद को गांधीजी ने स्वामी जी का हत्यारा नहीं माना और उसे अपना भाई कहा। हालांकि न्यायालय से उसे फाँसी की सज़ा हुई। न्यायालय में उसका बचाव प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता डॉ. आसिफ अली ने किया था। इसके बावजूद आर्यसमाज की उदारता देखिए कि गांधीजी स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल कांगड़ी के दीक्षान्त समारोह में भाषण दे रहे हैं और वो भी उनकी हत्या के तुरन्त बाद अगले ही वर्ष १९२७ में।

गांधीजी का मानना था कि आर्यसमाजियों ने शुद्धि इत्यादि का कार्य करके मुसलमानों को भड़काया, अत: अब्दुल रशीद स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या का दोषी नहीं- "I have called Abdul Rashid a brother and repeat it. I do not even regard him as guilty of Swami's murder. Guilty indeed are those who excited feelings of hatred against one and another."

यदि आप हिन्दुओं को और मोदी को गालियाँ बकते हुए गायों का वध करने, केरल इत्यादि में राजनीतिक दलों द्वारा गायों को सरेआम काटकर खाने का वीडियो जारी करेंगे, आपके मौलवी-मौलाना यदि बंगाल में ममता बनर्जी के साथ मिलकर गाय काटने-खाने को अपना अधिकार घोषित करेंगे, तो गांधीजी के उक्त शब्दों में उत्तेजित गौरक्षकों को गौहत्यारों को दंडित करने, मार देने का अधिकार मिल गया क्या?

घटनाओं के दोनों पक्षों को सम्यक् रूप से देखकर ही निर्णय करना चाहिए, क्योंकि संसार में कोई बात पूर्णतया गुणयुक्त नहीं होती और न कोई पूर्णतया गुणरहित होती है। सभी कार्यों में भलाई और बुराई दोनों दिखाई देती हैं -

नात्यन्तं गुणवत् किंचिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु च।। महाभारत।।

-दिनेश

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ नि:शुल्क दी जाती हैं। डॉ. रमेश मुनि जी चिकित्सक के रूप में इस चिकित्सालय का कुशलतापूर्वक कार्यभार सम्भाल रहे हैं। चिकित्सालय का समय प्रात: ९ से ११ बजे तक है। रविवार का अवकाश होता है।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

मृत्यु सूक्त-१२

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्या

परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां, यस्ते स्व इतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि, मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।।

इस वेद-ज्ञान की चर्चा के प्रसंग में हमने पीछे देखा था कि **'परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थाम्'**-यहाँ मृत्यु को संबोधन किया गया है कि तुम देवयान मार्ग को छोड़कर पितृयाण मार्ग की ओर जाओ। **'चक्षुष्मते शृण्वते ते...ब्रवीमि'** अर्थात् तुम देखने वाली हो, तुम समझने वाली हो, सुनने वाली हो, तुम हमारी संतानों को, वीरों को, हमारे श्रेष्ठ लोगों को हिंसित मत करो।

इस मृत्यु की चर्चा को करते हुए हमने पीछे देखा कि जितना सत्य जीवन है, उससे कम सत्य मृत्यु नहीं है। जीवन एक पक्ष है मनुष्य का और मृत्यु उसका दूसरा पक्ष है और उस स्थिति में हमने एक बात अनुभव की थी कि हम जीवन किसे कहते हैं, मृत्यु किसे कहते हैं। इसके लिए हमने यजुर्वेद का एक मन्त्र देखा- **वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्**। आत्मा कभी मरता नहीं है, कभी उत्पन्न नहीं होता है, कभी परिवर्तित नहीं होता है, छोटा-बड़ा नहीं होता है, बदलता नहीं है। जो प्रकृति से प्रभावित होता है, वो प्रकृति को प्रभावित करता है। जब आत्मा इस शरीर में होता है, तो वह शरीर को ही अपना मानता है, स्वयं को शरीर ही मानता है और शरीर स्वयं को आत्मा मानता है। यह जो इनका अत्यन्त संयोग है, मेल है, एक-दूसरे को प्रभावित किए हुए है, इस परिस्थिति को यदि कोई समझ ले तो जो भ्रम, जो मिथ्या ज्ञान, जो अवास्तविकता है, वो हमारी समझ में आ सकती है।

पहले भाग के मन्त्र में हमने शरीर के बारे में विचार किया था, मन्त्र का जो दूसरा भाग है उसमें कहा गया है- **ओ३म् क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतं स्मर।** यहाँ संबोधन है, हे क्रतो, अर्थात् जो कर्मशील है। यहाँ तीन शब्द हैं और तीनों शब्दों पर अनेक भाष्यकारों ने अलग-अलग तरह से विचार किया है। कुछ का मानना है कि मृत्यु के समय परमेश्वर का स्मरण किया जाना चाहिए-**क्रतो स्मर**। अपने सामर्थ्य का स्मरण किया जाना चाहिए-**क्लिबे स्मर**। अपने कार्यों का, अपने भूतकाल का स्मरण किया जाना चाहिए- **कृतं स्मर**। जैसा कि हम जानते हैं, ये तीनों चीजें हमारे उस काल से जुड़ी हुई प्रक्रिया में सम्मिलित हैं। मूल बात यह है कि जब हम प्रस्थान करते हैं संसार से, तब या तो प्रस्थान हम जहाँ कर रहे हैं वहाँ की याद करेंगे या जहाँ से हम जा रहे हैं वहाँ की करेंगे और या हमारा जो रास्ता है उसकी करेंगे। वही तीन बात यहाँ पर हैं। मृत्यु को प्राप्त होने वाले व्यक्ति के सामने क्या परिस्थिति होगी? वो या तो परमेश्वर का स्मरण करता हुआ जाएगा, या उस समय उसको अपने पिछले कर्मों की स्मृति आ रही होगी। वो कहाँ जाना चाहता है, कहाँ जा रहा है, उसका सामर्थ्य, उसकी योग्यता उस समय उसको पता चलती है।

प्रश्नोपनिषद् में ओंकार को लेकर एक प्रश्न उठाया है। प्रश्नोपनिषद् में छः प्रश्न हैं और उनमें जो पांचवाँ प्रश्न है, उसमें प्रश्न उठाया है कि **जो ओंकार का ध्यान करता है, अन्तिम समय में, उसकी क्या गति होती है? आप इसको सामान्य परिस्थिति** में समझिए-हम समझते हैं कि हम आखिरी समय में ओ३म् को याद कर लेंगे तो ओ३म् को प्राप्त हो जायेंगे। मूल बात यह है कि मनुष्य जब यात्रा करता है तो यात्रा के लिए, 'कहाँ जाना है', यह निश्चित होता है। यात्रा को वो प्रारम्भ ही तब करता है जब उसके सामने एक लक्ष्य होता है, एक निश्चय होता है, एक उद्देश्य होता है और वह उस उद्देश्य को ध्यान में रखकर यात्रा का प्रारम्भ करता है। यदि हम यह सोचें कि जब यात्रा करेंगे तो अन्तिम समय में सोच लेंगे कि कहाँ जाना है, ऐसे तो यात्रा कहाँ ले जाएगी? वहाँ जैसी परिस्थिति, जैसा वाहन, जैसी चीज़ मिलेगी आप उसमें यात्रा करोगे। इस मृत्यु के समय में जो विचारने की बात है वो केवल इतनी है कि यात्रा

आपकी सुविचारित है या अविचारित है। सामान्य रूप से मनुष्य की यात्रा अविचारित रहती है, क्योंकि यात्रा का प्रारम्भ हम समझते हैं कि मृत्यु से होगा। लेकिन जिस दिन यात्रा प्रारम्भ करेंगे उस दिन हमारी तैयारी थोड़े ही होती है! यात्रा प्रारम्भ होनी है, ये जब निश्चित हो गया तब तैयारी का क्या प्रश्न? हमें तो पहले से पता होना चाहिए कि हमें जाना कहाँ है, हमें क्यों जाना है, हमें कब जाना है। जब ये पता होगा तब हमारी यात्रा अलग तरह की होगी। इतना ही अन्तर है–जो आदमी सोचकर यात्रा करता है उसकी यात्रा में और अकस्मात् जाना पड़ता है उसकी यात्रा में। इन दोनों में जो अन्तर है, वही अन्तर साधक की मृत्यु में और सांसारिक की मृत्यु में है। सांसारिक व्यक्ति संसार की यात्रा के साधन, सुविधा, सामान आदि सबकी योजना बनाता है।

जीवन में क्या पढ़ना है, क्या करना है, कहाँ रहना है, कैसा घर बनाना है, सब मैं योजनापूर्वक काम करता हूँ तो मेरे मस्तिष्क में यह बात कभी क्यों नहीं आती कि जब मैं स्थान बदल लूँगा, जब मेरी मृत्यु हो जाएगी, तब मैं उस यात्रा पर जाऊँगा तो मैं कैसे जाऊँगा? इसमें एक तो मूल कारण यह है कि मैं यात्रा पर जाऊँगा, इसका मुझे विश्वास ही नहीं है। भगवान् ने हमारे अन्दर एक विचित्र स्थिति पैदा करके भेजा है, पर यदि वो नहीं होती तो भी नुकसान था, हानि थी। यदि वो परिस्थिति नहीं होती तो संसार से हमारा लगाव ही नहीं होता संसार के प्रति हमारा आकर्षण ही नहीं होता। संसार के प्रति आकर्षण नहीं होता तो संसार का कोई काम हो ही नहीं सकता था। इसलिए जब हम संसार से जुड़े तो हमारे अन्दर संसार के प्रति मोह, आकर्षण, आसक्ति का भाव बनाया। इस आकर्षण ने हमको संसार में जीवित रहने के लिए बाध्य किया और उसकी व्यवस्था करने के लिए मुझे योग्य बनाया, प्रेरित किया और उस योग्यता का लाभ मैंने जीवन में उठाया। मैं अपने जीवन में तो सारी व्यवस्था करता हूँ। मेरे जीवन का भाग बँटा हुआ है, मैं प्रतिदिन की व्यवस्था भी करता हूँ, मुझे प्रत्येक मास की व्यवस्था करना भी आता है, मुझे प्रत्येक वर्ष की व्यवस्था करने के बारे में भी पता है। मैं कई बार बहुत-बहुत वर्षों की व्यवस्था भी कर सकता हूँ और उससे जब नीचे जाता हूँ तब मुझे बहुत थोड़े-थोड़े समय की व्यवस्था करना भी अच्छा लगता है। मैं किसी काम को कुछ घंटों के लिए करता हूँ, किसी काम को कुछ मिनटों के लिए करता हूँ, कुछ काम को मैं आधे दिन के लिए करता हूँ, कुछ काम को मैं पूरे दिन के लिए करता हूँ, तो मेरा सारा जीवन मिनटों में, घंटों में, दिनों में, मास में, वर्षों में, जीवन में बँटा हुआ है और यह जो छोटी इकाई है वो एक बड़ी इकाई को बनाती है। मिनट से घंटा बना है, घंटे से दिन बना है, दिन से मास बना है, मास से वर्ष बना है, वर्षों से जीवन बना है। तो मेरी जो योजना है वो छोटी इकाई से बनती है, तब वो बड़ी इकाई तक पहुँचती है। यदि जीवन को भी हम एक इकाई मान लें तो मुझे दूसरी इकाई का भी तो प्रबन्ध करना पड़ेगा। जीवन के बाद एकदम जीवन तो नहीं है। जीवन के बाद एक ही जीवन तो नहीं है। वहाँ मेरी समस्या दूसरी है कि यहाँ से जब मैं जाता हूँ तो अगला रास्ता भी मेरे पहले रास्ते पर निर्भर करता है। यदि मैंने पहले ही गलत रास्ता लिया हुआ है तो अगला उचित रास्ता मुझे मिलने वाला नहीं है। मैं उस पुल पर ही नहीं जाऊँगा जो उससे मुझे जोड़ता हो। इसलिए मुझे यह भी देखना है कि वर्तमान में जो मेरा मार्ग है, वो मुझे मृत्यु के बाद के मार्ग से ऐसे जोड़े जिससे मैं उन्नति की ओर, अच्छाई की ओर, वर्तमान की ओर जाऊँ। इसलिए यदि मैं यह सोचता हूँ कि मुझे केवल यहाँ-यहाँ के बारे में सोचना है और वहाँ के बारे में नहीं सोचना है, तो मेरा यहाँ का प्रयोजन तो जो होगा सो सिद्ध भले ही हो जाए, लेकिन वहाँ का प्रयोजन मुझे सिद्ध नहीं होगा इसलिए वहाँ मेरा प्रयोजन कभी पूर्ण नहीं होगा। यहाँ जो बात कही है, **'ओंकारान्तं ध्यायीत'** जो ध्यान हो वो ओंकार का हो। ओंकार का ध्यान हो इसका मतलब यह है कि आप उस रास्ते पर चल रहे हैं, जिस रास्ते पर जाकर के ओंकार से आप अपने को जोड़ सकते हैं। जीवन में आपने वो रास्ता चुना है, उस रास्ते का अनुसरण किया है, तभी आप उस रास्ते पर जा सकते हैं। क्योंकि संसार में रास्ते अलग-अलग हैं, यह कैसे पता? यह हमें पता चल रहा है कि हर व्यक्ति अलग-अलग तरीके से चलता है, अलग-अलग उसके परिणाम हैं। किसी के पास सुख है, किसी के पास दुःख है, किसी के पास बहुत है, किसी के पास अभाव है,

किसी के पास प्रसन्नता है, किसी के पास अप्रसन्नता है, क्योंकि यहाँ भिन्नता है। जैसे एक शहर की ओर जाने वाले मार्ग भी बहुत हैं और एक शहर से आने वाले मार्ग भी बहुत हैं, तो हम एक शहर में रहते हुए, आवश्यक नहीं है कि सब एक ही रास्ते पर जाकर एक ही शहर में पहुँचें। हम एक शहर, एक नगर में रहते हुए, एक संसार में रहते हुए जब अलग-अलग ग्रामों, अलग नगरों, अलग-अलग स्थानों पर पहुँच रहे हैं, तो वैसे ही एक जीवन में हम रहते हुए सब एक ही जीवन में पहुँचेंगे, ऐसा नहीं है, ये संभव नहीं है, क्योंकि इस जीवन से भी बहुत सारे रास्ते इधर से उधर जा रहे हैं। इसलिए यहाँ रहते हुए मुझे चुनाव करने की आवश्यकता है। यदि वो चुनाव मैंने किया तो भविष्य में मेरा रास्ता उसी के अनुकूल रास्ते से जुड़ेगा। मुझे अगला जन्म उसी के अनुकूल परिस्थिति में मिलेगा। मैं यहाँ से उसी परिस्थिति के सामने जाऊँगा। और यदि मैंने वह रास्ता नहीं चुना है तो '**ओंकारान्तम्**' नहीं हो सकता। मैं अन्तिम समय में ओंकार का जप कर लूँ, यह संभव नहीं है। वो केवल तब संभव है जब मैंने उसको इस जन्म में, इस जीवन में अपनाया हो। जितने अंश में अपनाया हो उतने अंश में वो मेरे लिए लाभदायक होता है, उतने अंश में वो मेरे लिए मार्गदर्शक होता है, उतने अंश में मेरे लिए यहाँ से दूसरी जगह यात्रा का साधन बनता है। जो शब्द है मन्त्र में, '**कृतं स्मर**' क्यों **कृतं स्मर**? क्योंकि तुझे जाना है, वो जाने की यात्रा तेरे कृत (किये हुए) पर निर्भर करती है। तेरे कृत से ही उस यात्रा का प्रारम्भ होता है। ऐसा नहीं हो सकता कि तेरा जो अकृत है वो तुझे कृत की ओर ले जाए। तो इस दृष्टि से इस मन्त्र में तीन शब्दों पर विचार करते हुए मृत्यु की परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया है।

आर्यों के लिये शुभ सूचना

'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर' छपने के लिये तैयार

कुछ समय पूर्व 'परोपकारी' में सूचना प्रकाशित हुई थी कि पं. लेखराम आर्य मुसाफ़िर के साहित्य 'कुल्लियाते आर्य मुसाफ़िर' को परोपकारिणी सभा प्रकाशित करने जा रही है। इस सूचना को पढ़कर आर्यजगत् में उत्साह का संचार होना स्वाभाविक ही था, जिसके परिणामस्वरूप इस ग्रन्थ को छापने के लिये कई साहित्यप्रेमियों ने सभा को सहयोग भी किया, परन्तु पंडित लेखराम जैसे नाम पर यह सहयोग पर्याप्त मालूम नहीं हुआ। पंडित लेखराम वह नाम है जिसके वैदिक-ज्ञान के सामने विरोधी काँपते थे। ऐसे सिद्धान्तमर्मज्ञ ने अपनी संचित ज्ञान-राशि को लेखबद्ध किया और इस लेखबद्ध ज्ञानराशि को यति शिरोमणि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने एकत्रित किया और एक ग्रन्थ निर्मित हुआ, जिसका नाम था 'कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर'। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित हुआ। वर्त्तमान में यह ग्रन्थ दुर्लभ हो गया था। परोपकारिणी सभा ने इसे पुनः प्रकाशित करने का निर्णय लेकर पं. लेखराम को पुनर्जीवित कर दिया है। हमने लेखराम का गुणगान ही सुना है, उनके जीवन को ही पढ़ा है, पर वह इस उच्च पदवी को कैसे पा गये- इसकी सच्ची खबर तो उनके लिखे पन्ने ही बता सकते हैं। इन पन्नों को किताब रूप में छापने के लिये जैसा उत्साह, जैसी उमंग दिखनी चाहिये थी, उसमें अभी न्यूनता ही नज़र आती है।

अब यह ग्रन्थ छपने के लिये प्रेस में भेजा जा रहा है। अच्छे कार्यों का सदैव प्रोत्साहन होना चाहिये, इस दृष्टि से इस पुस्तक में **११०००/-रु.** का सहयोग करने वालों के नाम प्रकाशित किये जायेंगे। **एक लाख रु.** से अधिक का सहयोग करने वालों का चित्र सहित आभार व्यक्त किया जायेगा।

आइये, महर्षि दयानन्द के मिशन के लिये अपना जीवन देने वाले आर्यपथिक पं. लेखराम को केवल शब्दों से याद न करके उन्हें पुनर्जीवित करने में भरपूर उत्साह से सहयोग करें।

ओम्मुनि
मन्त्री, परोपकारिणी सभा

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

पं. लेखराम जी के मौलिक तर्क, अद्भुत उत्तर- पूज्य पं. लेखराम जी का ग्रन्थ संग्रह विद्यार्थी जीवन से ही (जब स्कूल में था) देखता-पढ़ता रहा परन्तु, अब परोपकारिणी सभा के द्वारा आने वाले नये संस्करण का सम्पादन करते हुये इस लेखक को पण्डित जी के एक-एक शब्द, एक-एक वाक्य को गहराई से पढ़ने और उस पर मनन-चिन्तन-विचार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इससे इस सेवक को जो लाभ प्राप्त हुआ है उसे शब्दों में बताया नहीं जा सकता। पाठकों की सेवा में उनके ग्रन्थ 'पुनर्जन्म मीमांसा' से कुछ तर्क व उत्तर यहाँ दिये जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इस ग्रन्थ को प्रत्येक सत्यान्वेषी सज्जन तक पहुँचाकर हम धर्म-रक्षा, जाति-रक्षा करें।

हैदराबाद सिंध के पादरी वी.सी. बैनर्जी के आक्षेप कि यदि हमारा पूर्वजन्म था तो उसकी स्मृति क्यों नहीं रहती? का उत्तर देते हुये लिखा कि किसी को गर्भ की बातें जन्म लेने के पश्चात् याद रहती हैं? तीन-चार वर्ष की आयु में घटित घटनाओं की किसको स्मृति है? यौवनकाल की बुढ़ापे में किसको सब घटनायें स्मरण हैं? तब क्या वे घटनायें घटी ही नहीं?

फिर पूछा, पादरी जी! आदम को परमात्मा ने ज्ञान-वृक्ष न चखने की सीख दी थी, उसे अगले ही दिन यह ईश्वरीय आदेश क्यों भूल गया और परमात्मा को यह पता न चला कि यह मेरा कहा नहीं मानेगा?

पादरी जी ने कर्म द्वारा सुख-दुःख प्राप्ति पर आक्षेप किये तो आपने पादरी के निरर्थक आक्षेपों के कई मार्मिक उत्तर देते हुये यह लिखा कि निःसन्देह बिना कर्मों के सुख-दुःख नहीं मिलता। बाइबिल का मति १६-२७ का प्रमाण दिया, ''For the son of Man is going to come in his Father's glory with his angels, and then **he will reward everyone according to what they have done.**'' आगे का प्रमाण तो और भी प्रबल है।

''For by your words you will be acquitted and by your words you will be condemned.'' आगे का प्रमाण क्या बेजोड़ है। ''Do not be be deceived: God cannot be mocked. **People reap what they sow.**''

अगला प्रमाण देखिये। ''For god does not show **favoritism**.(Romans 2-11)'' फिर लिखा है, ''To those who by persistence in doing good seek gloory, honor and immortality.''(Romans 2-7)

ये सब प्रमाण हमने अमेरिका के नवीनतम अनुवाद से दिये हैं। एक पादरी का आक्षेप है कि नन्हे शिशु को जन्म लेते ही ज्वर का दण्ड (किसी पूर्व कर्म का फल) देना क्या ईश्वर की निर्दयता नहीं?

पं. लेखराम जी ने प्रत्युत्तर दिया कि बिना किसी कारण के जन्म से किसी को लंगड़ा, अपंग, कोढ़ी और अन्धा उत्पन्न करना निर्दयता है। आदम के अपराध के कारण उसकी सारी सन्तान को पापी बताकर शाप व दण्ड देना निर्दयता है।

हव्वा (Eve) की सारी सन्तान (स्त्री जाति) को बच्चे को जन्म देते समय प्रसव पीड़ा का दण्ड तो निर्दयता है। कर्म किसी का, दण्ड किसी को? यह कैसा न्याय है?

ऊपर के बाइबिल के सब प्रमाण क्या वेद की कर्मफल व्यवस्था की पुष्टि नहीं करते? क्या ये सब वेद ऋचाओं की प्रतिध्वनि नहीं हैं? आज पर्यन्त पण्डित जी का प्रतिवाद कोई नहीं कर सका।

एक महत्त्वपूर्ण जानकारी- 'परोपकारी' के एक अंक में मान्य श्री ओम् मुनि जी ने आर्य मात्र से पं. लेखराम जी की कुल्लियात के प्रकाशन व प्रसार में सहयोग करने की प्रबल प्रेरणा देते हुए कुल्लियाते आर्य मुसाफिर के एक ही संस्करण (महात्मा मुंशीराम जी द्वारा प्रकाशित) का उल्लेख किया है। ध्यान रहे कि उर्दू में भी एक वैसा ही संस्करण त्यागमूर्ति साहित्यानुरागी पूज्य पं. लक्ष्मण जी

आर्य ने भी प्रकाशित किया था। इसकी एक दुर्लभ प्रति हमने परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित करवा दी थी। सम्भव है कहीं किसी समाज के पुस्तकालय में भी हो।

डॉ. धर्मवीर वेदवक्ता सम्मान- मन में एक उत्कट इच्छा थी कि प्राणवीर पं. लेखराम जी के ग्रन्थ संग्रह के प्रकाशन में आर्यों को सहयोग करने की विनती से पूर्व स्वयं भी इस यज्ञ में आहुति दूँ। क्या किया जावे? कोई मार्ग सूझ नहीं रहा था। ईश्वर की कृपादृष्टि पर अटल विश्वास है। रह-रहकर पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी के श्रीमुख से सुनी एक घटना का स्मरण होता रहा। अपनी आहुति डाले बिना परोपकारी में इस निमित्त दान की अपील करना अखरता था। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के ज्ञानकोष में सत्प्रेरणायें देने के लिये प्रेरक प्रसंगों का अटूट भण्डार था। एक दिन उनकी कुटिया के बरामदे में श्री चरणों में बैठा उनकी अमृतवाणी का श्रवण कर रहा था।

इस सेवक को प्रेरणा की घुट्टी पिलाते हुए पूज्यपाद गुणी मुनि ने कहा, ''एक बार एक आर्यसमाज के उत्सव पर अपार जनसमूह से वेद-प्रचार के लिये दान की अपील करने के लिये समाज के अधिकारियों ने पं. चमूपति जी से प्रार्थना कर दी। उनसे बड़ा प्रभावशाली व्यक्तित्व और विद्वान् वहाँ और कोई था ही नहीं।

पण्डित जी ने उनकी विनती को आदेश मानकर माइक के सामने आकर अपील के आरम्भिक शब्द बोलते हुये अपनी जेब से कुछ रुपये निकालकर वेद-प्रचार के लिये पहले अपना दान दिया। अधिकारी और श्रोता सब दंग रह गये। यह क्या हुआ! फ़कीर चमूपति के पास है ही क्या? इसकी आय के स्रोत ही क्या हैं। अधिकारियों ने समझा कि हमसे अनर्थ हो गया।

न जाने तब किस-किस ने रोका और कहा, आपको नित्यप्रति उत्सवों पर जाना होता है। आप कहाँ-कहाँ दान देंगे? हम आप सरीखी विभूति से अपील न करवायें तो क्या इसमें समाज की शोभा होगी?

''तब पण्डित जी ने कहा, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा, परन्तु अपील करने से पहले अपनी आहुति दूँगा।'' धन की वृष्टि ऐसी हुई कि जनता देखकर दंग रह गई।

अकस्मात् रामगढ़ जैसलमेर से श्रीमान् पीताम्बर जी ने सूचना दी कि उनके छोटे भ्राता श्री कमल जी ने **डॉ. धर्मवीर वेदवक्ता सम्मान** के लिये इस वर्ष आपको चुना है और राशि आपके पास पहुँचा दी गई है। उनकी शोभा तो इसमें थी कि यह सम्मान देवनगर (महेन्द्रगढ़) के उत्सव पर या ऋषि मेले पर दिया जाता। इसे करुणानिधान भगवान् का वरदान मानकर बिना समय गंवाये सभा को झट से ग्यारह सहस्र रुपये पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह के लिये भेंट कर दिये। विलम्ब करता तो कहीं मन के भाव बदल भी सकते थे। सोचता हूँ कि परमेश्वर ने कमल जी के मन में यह सद्भाव कैसे भर दिया कि समारोह की प्रतीक्षा मत करें, अभी यह राशि पहुँचायें? इस सेवक ने पुरस्कार की भूख नहीं दर्शाई थी। किसी ने पीताम्बर जी को, कमल जी को राशि अभी पहुँचाने को कुछ कहा नहीं था। मानना पड़ेगा कि सर्वज्ञ प्रभु ने ही उनके मन को ऐसी प्रेरणा दी। यह आध्यात्मिक प्रसंग है। इसकी यही व्याख्या है। इस अनूठी सोच के लिये यह परिवार सब वेदभक्तों की बधाई का पात्र है। **प्रभु की वाणी वेद के लिये एक-एक श्वास देने वाले डॉ. धर्मवीर जी के भक्त-प्रशंसक भी कैसे-कैसे हैं?**

अन्धविश्वास और हिन्दू- अन्धविश्वास विश्वव्यापी महारोग है। किसमें अन्धविश्वास नहीं हैं? मुसलमान पक्के कुरानवादी हैं। ईश्वरेतर पूजा को कुफ्र मानते हैं, परन्तु कब्रपूजा, पीरपूजा, ताजिया पूजन, जिन्न, भूत, आसमानी जन्नत, जहन्नुम, हूरों के गिलमान आदि के बिना आज इस्लाम में क्या धरा है? मुर्दों की पूजा, कब्रों पर जा-जा के मन्नतें माँगने वालों की भीड़ इस्लाम की तौहीद (एकेश्वरवाद) की पोल खोल रही है। पाकिस्तान में चुनाव लड़ने वाले राजनेता शताब्दियों पहले अजमेर में दबाये गये ख़्वाजा से जीत की कामना लेकर माथा रगड़ने पहुँच रहे हैं। ईसाइयों में अन्धविश्वास क्या कम हैं? हम उन्हें क्या कहें?

हिन्दू तो अन्धविश्वास के विश्व के सब रिकार्ड तोड़ने में लगा है। टी.वी. में तिलकधारी ज्योतिषी सब

संकट दूर करने की गारण्टी देते हैं, परन्तु कश्मीर के उग्रवादियों की देशद्रोही गतिविधियों को तो समाप्त नहीं कर पा रहे। वेद में दोहरा-दोहरा कर एक ही ईश्वर की उपासना का उपदेश निर्देश है। उस ईश्वर का निज नाम ओ३म् है जिसका व्याकरण में भी रूप नहीं बदलता। ओ३म् का न द्विवचन, न बहुवचन, फिर भी हिन्दुओं में तो भगवानों की मण्डी लगी रहती है। पूना में एक ने मुझे कहा, आपके ओ३म् में वह शक्ति नहीं जो राम के नाम में है। मैंने पूछा, ''फिर राम जी ओ३म् के उपासक क्यों थे? आप राम नाम से राम का मन्दिर तो बनवा नहीं सके, हम शक्ति को कैसे जानें व मानें? गुरुनानक जी ने 'एक ओंकार' का जयकार लगाकर सन्मार्ग दिखाया, परन्तु सिख भी अन्धविश्वासों में उलझकर रह गये।''

सामूहिक बलात्कार तथा बाबों के दुराचरण की घटनायें बढ़ती जा रही हैं। हिन्दू योगगुरुओं के नयनों से एक अश्रु न टपका। भक्त और भगवान् का सीधा सम्बन्ध मानने वाले योगगुरु शंकराचार्य की मूर्ति पर माला चढ़ाते, गंगा की आरती उतारते। कैसे-कैसे अन्धविश्वास पनप रहे हैं। किसी हिन्दू विचारक, सुधारक, नेता व संगठन ने इन पर रक्तरोदन किया? अन्धविश्वासों का खण्डन करना ये लोग पाप मानते हैं। अब टी.वी. में नित्यप्रति चौंकाने वाला लज्जाजनक समाचार सुनकर हम मूकदर्शक बने रहते हैं। किसी योगगुरु व हिन्दू नेता ने इस अन्धविश्वास पर दो शब्द नहीं कहे। राजधानी में एक पूरे परिवार के ग्यारह व्यक्ति आत्महत्या करके मर गये। किसी योग गुरु के नयनों से चार अश्रुकण न टपके। हिन्दुओं ने तो पूरे विश्व में अन्धविश्वास का नया कीर्तिमान स्थापित कर दिया। क्या किसी ने सुना कि कहीं पाँच ईसाई या सात मुसलमान जन्नत में जाने के लिये आत्महत्या करके मर गये। भारत में इस समय मुक्ति, मोक्ष पाने के लिये अनेक गुरु यहाँ-वहाँ रजिस्ट्रेशन करते हैं। हिन्दुत्व की दुहाई देने वाले किसी संगठन ने ऐसे अन्धविश्वासों के विरुद्ध जंग छेड़ने की घोषणा नहीं की।

आर्यसमाज अन्धविश्वासों से लड़ने वाला एक सशक्त संगठन था। उसके लिये उसकी संस्थायें और सम्पत्ति विपत्ति बन गये हैं। स्वामी श्री रुद्रानन्द, स्वतन्त्रानन्द, श्रद्धानन्द सरीखे साधु संन्यासियों का लोप हो जाना इन सब महारोगों का कारण है।

मेरे ऐसे ऐसे कृपालु- पिछले कुछ मास में देशभर से कई खोजी गवेषक आर्यसमाजों से और विशेषकर परोपकारिणी सभा से मेरा चलभाष नम्बर लेकर गत दो शताब्दियों में शुद्ध किये गये मुस्लिम व ईसाई मौलवियों व पादरियों के बारे में नई-नई जानकारी मांगते रहे। मेरे मन में सन्देह हुआ कि यह कोई पीएच. डी. करने वाले नहीं। ये इतने गवेषक कहाँ से आ गये? चलभाष पर लम्बी-लम्बी बातें करके मेरा समय नष्ट करते रहे। पूछा, ''आप कौन हैं? मेरा चलभाष नम्बर कहाँ से लिया? किस आर्यसमाज के सदस्य हो? जब मुसलमानों ने दिल्ली में सत्यार्थप्रकाश पर अभियोग चलाया तब आप कहाँ थे? आपके किसी नेता ने सत्यार्थप्रकाश की रक्षा के लिये दो शब्द कहे?''

ऐसा कड़ा पग उठाने से ऐसे चलभाष आने बन्द हो गये। यह भी पूछता रहा, आपने कभी अपनी संस्थाओं में, घरों में शुद्धि के लिये बलिदान देने वालों के बलिदान पर्व मनाये, चित्र लगवाये। पं. महेन्द्रपाल जी का नाम कुछ एक ने लिया। यह शुद्धि का प्यार नहीं था। यह तो आर्यसमाज की उपलब्धियों को cash (कैश) करने का खेल है। आर्यसमाज ही शुद्धि का कार्य कर सकता है। अन्धविश्वासी हिन्दू शोर तो मचा सकता है। यह कार्य उसके बस का नहीं। पं. देवप्रकाश जी के बारे में गप्पें गढ़ी गईं।

आर्यजन को यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक प्रश्न यह पूछा गया कि अब्दुल रशीद कौन था? पूज्य पं. देवप्रकाश जी को क्या नरगिस दत्त ने सत्यार्थ प्रकाश भेंट किया। इसे पढ़कर वह आर्य बन गये। मेरे ही एक लेख में पण्डित जी का पूर्व नाम अब्दुल लतीफ़ पढ़कर पूछा गया कि क्या उनका यही नाम था इत्यादि?

निवेदन है कि पण्डित जी का जीवन बड़ा घटनापूर्ण है। पूर्व नाम अब्दुल लतीफ़ ही था। उनका परिवार मूलतः दीनानगर का था। मढ़ियाँ गेट (अब गांधी गेट) दीनानगर में उनका परिवार रहता था। उनकी आत्मकथा की पाण्डुलिपि मेरे पास है। उसी के आधार पर उनका नाम लेखों में दिया, अन्यथा उनके पूर्व नाम का किसी ने कहीं उल्लेख नहीं

किया। यह नरगिस दत्त वाली कहानी मनगढ़न्त है। पण्डित जी श्री स्वामी दर्शनानन्द आदि का साहित्य पढ़कर तथा घर में मछली को छीलने का दृश्य देखकर, तड़पती मछली को...उनको मांसाहार से घृणा हो गई।

श्री अनिल जी ने उनका ७०-७५ पृष्ठ का जीवन लिखने की प्रेरणा दी है। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी ने अन्तिम वेला में उनकी बहुत सेवा की। वहीं दीनानगर में उन्होंने देह का त्याग किया। वह पं. लेखराम जी की परम्परा के एक मर्मज्ञ, तपस्वी विद्वान् और इतिहास पुरुष थे। मेरा उनसे कोई पचास वर्ष का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। शेष फिर कभी विस्तार से लिखा जायेगा।

पठनीय रोचक साहित्य चाहिये- पत्रों का स्तर गिर चुका है। आर्यसमाज में सम्पादक कौन-कौन हैं? कितने हैं? गम्भीर, रोचक, युग के अनुरूप साहित्य चाहिये। पुराने गम्भीर मिशनरी गवेषक साहित्यकारों से आर्यसमाज कट चुका है। माननीय डॉ. वेदपाल जी से प्रार्थना की है। वेद की ५०० सूक्तियों की व्याख्या का स्वाध्याय संग्रह जैसा एक स्थायी महत्त्व का दैनिक स्वाध्याय के लिये एक ग्रन्थ तैयार कर दें। उसकी अर्थ-व्यवस्था हो चुकी है। स्वामी वेदानन्द जी महाराज के मौलिक पठनीय वेद व्याख्या ग्रन्थों का लोप हो जाना दुर्भाग्यपूर्ण है। वेद और वैदिक सिद्धान्तों के स्वाध्याय शिविर कहीं लगते ही नहीं। इस पर क्या प्रतिक्रिया दी जावे?

महर्षि दयानन्द जी से जुड़े एक महत्त्वपूर्ण, सर्वथा उपेक्षित ग्रन्थ का सम्पादन करने के लिये कटिबद्ध हो गया हूँ। इस ग्रन्थ का पता तभी लगेगा जब प्रकाशन की प्रक्रिया आरम्भ होगी। इस अद्भुत ग्रन्थ को इतिहासपुरुष लाला गोविन्दराम जी को समर्पित किया है। उन्हीं के पौत्र श्री अजय इसे प्रकाशित करने जा रहे हैं। श्री लाला गोविन्दराम जी की सत्प्रेरणा से उठती जवानी में यह अनूठा ग्रन्थ मैंने पढ़ा था। ऋषि के इस अनूठे ग्रन्थ का लोप न हो जावे सो कुल्लियात के कार्य को सिरे चढ़ाकर सारी शक्ति इस पर लगाने का दृढ़ निश्चय किया है।

डॉ. हरिश्चन्द्र जी वैज्ञानिक मिशनरी विद्वान् के सद्ग्रन्थों के प्रकाशन व प्रसार की किसी को कोई चिन्ता नहीं। इसके प्रकाशन की चिन्ता करने वाला डॉ. धर्मवीर अब कोई कहीं दिखाई नहीं देता। जीवन की साँझ में अब ऐसे करणीय और महान् कार्य को मैं हाथ में नहीं ले सकता। गंगा-ज्ञानसागर (चारों भाग) का नया संस्करण आर्य जनता को श्री अजय अति शीघ्र देने जा रहे हैं। मेरे लिये यही सन्तोष व गौरव की बात है। अन्तिम श्वास तक जो कुछ कर सकता हूँ, करूँगा। आर्य जनता का स्नेह बना रहे।

माता का कर्त्तव्य

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करें कि जो जिस वर्ण का स्थान-प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-कुछ बोलने ओर समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे वैसे प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें।

(स.प्र.द्वि.स.)

२६ अगस्त पुण्यतिथि पर विशेष...

आर्यसमाज के निर्भीक लोककवि

पूज्य दादा बस्तीराम जी

राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

वेद-प्रचार, समाज-सुधार तथा जनजागरण के इतिहास में आर्यसमाज के निडर लोक कवि वेदोपदेशक दादा बस्तीराम जी का स्थान बहुत ऊँचा है। आपने ऋषि दयानन्द के मिशन व जनजागरण के लिये अस्सी वर्ष तक सक्रिय समाज सेवा की। इतने लम्बे समय तक धर्म-प्रचार के लिए देश भर में किसी विद्वान् महात्मा ने सक्रिय सेवा नहीं की। रेवाड़ी के राव युधिष्ठिर सिंह की प्रार्थना पर ऋषिवर २५ दिसम्बर सन् १८७८ से ९ जनवरी सन् १८७९ तक रेवाड़ी में अमृतवर्षा करते रहे। हरियाणा के केवल एक ही नगर में महर्षि ने जन जागरण का शंखनाद किया।

दादा बस्तीराम धर्म-प्रचार के क्षेत्र में तो पहले ही उतर चुके थे, परन्तु महर्षि के रेवाड़ी आगमन से लेकर सन् १९५८ अपनी मृत्यु पर्यन्त आपने ऋषि मिशन के लिये अविराम संग्राम किया। न तो आप चैन से बैठे, न हरियाणा के आर्यों को चैन लेने दिया। रेवाड़ी में नित्य ऋषि दरबार में वे नये-नये गीत रचकर धर्मप्रेमियों को अनुप्राणित और तृप्त करते रहे। एक दिन एक गीत में कुछ सैद्धान्तिक उपदेश देकर ऋषिवर की महिमा पर भी कुछ भावपूर्ण पंक्तियाँ सुनाईं।

उनके सरस गीत व मधुरवाणी को सुनकर उस दिन ऋषि जी ने पं. बस्तीराम से अत्यन्त स्नेह से कहा था, ''भविष्य में हमारी उपस्थिति में हमारे सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना।'' महर्षि की यह सीख पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज जैसे हमारे पूजनीय महात्माओं ने पल्ले बाँध ली। वह ऐतिहासिक गीत एक बार तो मैंने हरियाणा सभा के पत्र में छपवाया था। एक बार पहले भी छपा था। इस गीत की अन्तिम पंक्ति यह थी-

''बस्तीराम ऋषि का चेला इक तारे पै गावे सै''

इस गीत से यह भी सिद्ध हो जाता है कि विरोधियों का यह कथन कतई झूठ है कि महर्षि के बलिदान के पश्चात् आर्यो ने उन्हें ऋषि बना दिया। उनके जीवनकाल में ही उन्हें पत्रों में, लेखों में ऋषि लिखा व कहा जाता था।

आगे चलने से पहले हम विनती करते हैं कि दादा जी के ऐसे प्रेरक ऐतिहासिक गीतों को मरने मत दो। श्री आचार्य वेदव्रत के सहयोग से यह गीत छपकर प्रचारित होना चाहिये। **रेवाड़ी में राव युधिष्ठिर सिंह की प्रचार व्यवस्था तथा ऋषि की अमृतवाणी तथा दादा बस्तीराम के गीतों की गूञ्ज सागर पार सुनाई देने लगी। वह प्रथम भारतीय विचारक, यति, योगी और सुधारक थे जिस पर अमेरिका में सबसे पहले एक लम्बा लेख उनके फोटो सहित छपा, वह महर्षि दयानन्द थे। यह ऐतिहासिक लेख, पठनीय लेख दक्षिणी हरियाणा के जन जागरण के इसी अभियान के समय अमेरिका में प्रकाशित किया गया।** हरियाणा ने तब जो इतिहास रचा, उसमें दादाजी का भी योगदान रहा।

पं. बस्तीराम जी के भजन उस युग में हरियाणा के गाँव-गाँव में गाये जाते थे। उनके भजनों की रंगत ही न्यारी थी। पं. रामचन्द्र जी (स्वामी सर्वानन्द जी महाराज) बाल्यकाल में अपने ग्राम में वैदिक सत्संग का आयोजन करके भजनों द्वारा ही प्रचार किया करते थे। एक बार उनसे पूछा, ''महाराज! तब आपके प्रिय गीत क्या थे?'' आपने उत्तर दिया, ''वह युग पं. बस्तीराम जी के गीतों का था। वैदिक मन्तव्यों का मण्डन और अन्धविश्वासों का प्रबल खण्डन भजनों द्वारा होताा था।''

दादा जी ने हरियाणा के गीतकारों को नये-नये छन्द दिये। काशी शास्त्रार्थ पर उनके गीत की हरियाणा के बाहर भी धूम थी। 'वह कौन आया?' गीत सुनकर आबाल वृद्ध फड़क उठते थे। जब पं. रामपत सरीखे उनके शिष्य पण्डित जी के भजनों को झूम-झूक कर सुनाते थे तो श्रोता फड़क उठते थे।

उनका बेजोड़ गीत- आर्य गीतकारों ने ईश्वर भक्ति के अनेक हृदयस्पर्शी गीत रचे। महाकवि शङ्कर, केवलकृष्ण जी, प्रकाश कविरत्न, देशराज जी, आर्य मुनि जी, सुखलाल जी के ईश्वर के वेदोक्त स्वरूप पर रचे गये भजनों का

मूल्याङ्कन करने में समीक्षकों की लेखनी अक्षम है, परन्तु हम निर्विवाद रूप में यह कह सकते हैं कि दादा बस्तीराम रचित गीत-'धन-धन तेरी कारीगरी करतार' अपने विषय का बेजोड़ गीत है। इस गीत की एक-एक पंक्ति गाते हुए आस्तिक जन भाव विभोर हो जाते हैं।

नर तन सा चोला सिये दिया,
सूई धागा हाथ में कहीं नहीं।
पत्ते-पत्ते की कतरण न्यारी,
तेरे हाथ कतरणी कहीं नहीं।
कर दे वर्षा भर दे जंगल,
आकाश में सागर कहीं नहीं।
दिन-रात न्याय में फ़र्क नहीं,
तेरी दिखे कचहरी कहीं नहीं।

ऐसा भावपूर्ण और तार्किक गीत कहीं मिलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

उनकी ऋषि भक्ति की पराकाष्ठा- प्रज्ञाचक्षु पूज्य दादा बस्तीराम जी का एक गीत 'लहलहाती है खेती दयानन्द की'

हमने कादियाँ में ऋषि भक्त और वीर संन्यासी पूज्य बेधड़क स्वामी के मुख से पहली बार सुना था। वह जब भक्ति के भाव से इसे गाते थे तो उनके हृदय में लहरें लेती ऋषि भक्ति देखकर श्रोताओं का जोश भी बस देखते ही बनता था। पूज्य साहित्य पिता पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय की कोटि का गम्भीर दार्शनिक और विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार एक हरियाणवी ग्रामीण कवि पं. बस्तीराम जी के इस गीत पर मुग्ध था। गुरु जी की ऋषि भक्ति जब उन्हें गुदगुदाती थी तो अनायास ही यह पंक्ति उनके अधरों पर आती थी-

'लहलहाती है खेती दयानन्द की'

आश्चर्य की बात तो यह है एक प्रज्ञाचक्षु कवि ने इस गीत में लहलहाते खेतों का शब्द चित्र खींचा है। जब हरियाणा के ग्रामीण कृषक इसे जोश से गाते हैं तो एक समा बँध जाता है।

पंडित जी का एक शास्त्रार्थ- पं. बस्तीराम जी की सूझबूझ बहुत निराली थी। आपने छोटे-बड़े कई शास्त्रार्थ किये। सहस्त्रों बार शङ्का-समाधान करते हुये अपनी ईश्वरप्रदत्त सूझ की अमिट छाप छोड़ी। एक बार एक ग्राम के पौराणिक ब्राह्मणों ने यह देखकर कि कोई संस्कृतज्ञ विद्वान् तो आर्यसमाज के उत्सव पर पहुंचा नहीं, उन्होंने आर्यों को शास्त्रार्थ की चुनौती दे दी। ग्रामीण आर्य जाटों को उनके दादा बस्तीराम की तार्किक बुद्धि पर अडिग विश्वास था। शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार करने में चौधरियों ने कतई देर न लगाई।

दादा रणभूमि में डट गये। ''कहो! क्या कहते हो?'' उधर से पौराणिक पण्डित बोला, ''तुम्हारा 'ओ३म्' किस धातु से बना है?'' इधर से पं. बस्तीराम जी ने अपने तर्क का राकेट छोड़ा, ''अरे चौधरियों! यह पूछता है तुम्हारा ओ३म् किस धातु से बना है? सारी दुनिया जाने कि हम निराकार सर्वव्यापक परमात्मा के उपासक हैं। तुम्हारा गणेश, हनुमान, शिवजी, पार्वती पत्थर के, तांबे के या लोहे के बने होंगे। हमारा ओ३म् निराकार सर्वव्यापक है, उसका लोहे, पीतल, ताँबे आदि धातु से बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। दादा जी ने अपनी सूझ से व्याकरण के प्रश्न का ग्रामीणों की सहज बुद्धि की समझ में आने वाला उत्तर देकर वैदिक धर्म की विजय दुन्दुभि बजाकर सबको चौंका दिया। पौराणिक पण्डित देखते ही रह गये कि यह क्या हो गया! वैदिक धर्म की जय, ऋषि दयानन्द की जय-जयकार से सारा गाँव गूँज उठा।''

मांसाहार पर शास्त्रार्थ- एक बार मांसाहार पर कहीं छोटा-सा शास्त्रार्थ छिड़ गया तो प्रतिपक्षी ने कहा, क्या कोई ऐसी विधि भी है कि हिंसा का दोष भी न लगे और मांसाहार भी किया जा सके। झट से दादा जी ने उत्तर दिया कि जेर खा लिया कर। गाँव में गऊ, भैंस आदि पशु बहुत हैं। जेर मिलने की कोई समस्या नहीं।

एक बार पं. बस्तीराम के गांव वालों ने अपने उत्सव पर एक लोकप्रिय भजन मण्डली को बुलवाने की दादा जी से प्रार्थना की। उनको आशा थी कि दादा जी के प्रभाव से उस भजन मण्डली को अधिक दक्षिणा नहीं देनी पड़ेगी। उत्सव की समाप्ति पर उस मण्डली से पं. बस्तीराम जी ने पूछा, आपको कितनी दक्षिणा दी जाये? उसने चतुराई से कहा, दक्षिणा तो क्या लेनी और किसी दूरस्थ नगर जाने के लिये मण्डली का किराया माँग लिया।

अब उस मण्डली वाले के गाँव वालों ने उससे दादा

जी को बुलाने की प्रार्थना की। पं. बस्तीराम निमन्त्रण पाकर वहाँ पहुँच गये। विदाई समय जब उनसे वही प्रश्न पूछा गया तो आपने कहा, ''लण्डन प्रचारार्थ जाना है। आप टिकट दिलवा दें और कुछ नहीं चाहिये। उसको यह उत्तर पाकर अपनी भूल का ज्ञान हो गया।''

एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी को हरियाणा के किसी ग्राम में बुलाया गया। तब हरियाणा में व्याख्यान कोई सुनता नहीं था। सब दादा जी के प्रचार को सुनना चाहते थे। स्वामी जी महाराज को टोकते हुये एक ने कहा, ''तुझे भी भोजन व दूध मिल जायेगा। बैठा जा। दादा के भजन होने दे। इसपर दादा ने स्वामी जी महाराज को टोकने वाले को फटकार लगाकर उनको बोलने की विनती करते हुये उनकी सेवाओं व महानता पर बहुत कुछ कहा। यह पं. बस्तीराम का सौजन्य, शिष्टता व आर्यत्व था।''

उनकी निडरता- प्रज्ञाचक्षु पण्डित जी वैदिक धर्मप्रचार के लिये सदा निडरतापूर्वक वैर विरोध का स्वागत करते थे। भिवानी के पास के किसी बड़े कस्बे में विरोधी आर्यसमाज का प्रचार नहीं होने देते थे। यहाँ कुछ उत्साही युवकों ने दादा बस्तीराम जी का प्रचार कार्यक्रम रखा दिया। वहाँ पुलिस चौकी में कई पुलिस वाले पक्के आर्य और दादा के भक्त थे। पं. बस्तीराम जी को वहाँ की स्थिति का सब ज्ञान था। आपने वहाँ की स्थिति को ध्यान में रखकर अपना एक नया गीत रचा-

'पोप की ख़ाली हुई दुकान दीवाला निकल गया'

अपनी सुरीली तान छेड़कर दादा ने समा बाँध दिया। व्यवस्था बनाये रखने के लिये थाना से कई पुलिसियों के आने से कोई गड़बड़ करने की हिम्मत न कर सका। दादा का गीत उनके साहस का परिचय दे रहा था। आपके इस गीत को सुनकर श्रोता आर्यसमाज और दादा की अमिट छाप लेकर गये।

एक विशेष निवेदन- पं. बस्तीराम ने आर्यसमाज के कई आन्दोलन देखे, यथा लाला लाजपतराय के निष्कासन के समय आर्यो का दमन, समालखा बूचड़खाना विरोधी आन्दोलन, पानीपत और समालखा की शोभा यात्राओं पर प्रतिबन्ध, लोहारू का रक्तिम काण्ड, हैदराबाद सत्याग्रह, स्वराज्य संग्राम में आर्य नेता चौ. पीरूसिंह की भूमिका। दादा बस्तीराम ने तब वीर रस के गीत भी रचे होंगे? उनके ऐसे गीतों का कहाँ लोप हो गया? 'परोपकारी' के इस लेख का लिखना सार्थक हो जावेगा यदि कोई उत्साही आर्यवीर दादा के ऐसे दस-बीस वीर रस के गीत खोजकर दिखा दे। हमें दृढ़ विश्वास है कि श्री अभय, श्री अमित समालखा, श्री धर्मेन्द्र जी, श्री अनिल आर्य, श्री इन्द्रजीत् आर्य, प्रिंस रोशनलाल जी यह कार्य कर सकते हैं। ऐसा करके वे आर्यसमाज की व अपनी शोभा बढ़ायेंगे।

परोपकारी के पाठकों से निवेदन

प्रिय पाठकगण, सादर नमस्ते!

आप जैसे सहृदय पाठकों से निवेदन है कि आपकी प्रिय पत्रिका हम आपकी सेवा में निरन्तर प्रेषित कर रहे हैं ताकि युगनिर्माता महर्षि दयानन्द सरस्वती के लोकोपकारी एवं धार्मिक सन्देश जन-जन तक पहुँच सकें तथा उन कल्याणकारी विचारों को पढ़कर प्रत्येक पाठक सदाचारी, धर्मप्रेमी एवं वैदिक विचारधारा का अनुयायी बनकर वर्तमान में प्रचलित पाखण्ड, अन्धविश्वास को छोड़कर बुद्धिजीवी, तार्किक एवं सत्यान्वेषी बनकर समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुसंस्कारों से मुक्त रहे।

सज्जनो, हम इस पत्रिका की लाभ-हानि की बात नहीं कर रहे। इस निवेदन में केवल इतना जान लें कि पैसा भी किसी संस्था के प्रचार के लिए आवश्यक है। बहुत से महानुभावों का वार्षिक शुल्क हमें निरन्तर प्राप्त हो रहा है, परन्तु कुछ सदस्यों का शुल्क आता ही नहीं है, वर्षों तक रुका रहता है, पुनरपि उन्हें पत्रिका भेजी ही जाती है। अतः ऐसे सज्जनों से निवेदन है कि परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सदस्यता की रकम जमा कराकर इस पावन पत्रिका के निरन्तर प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर इस धर्म के स्रोत को जारी रखने की कृपा करें।

आशा है आप महानुभाव वार्षिक शुल्क भिजवाकर हमारा उत्साह निरन्तर बढ़ाते रहेंगे।

शङ्का समाधान - ३१

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- विशेषतः वैदिक विद्वान् जब परमात्मा के स्वरूप का प्रवचन करते हैं, तब वेद मन्त्र जैसे-'स पर्यगात्...' 'द्वा सुपर्णा...' या अन्य मन्त्रों से व्याख्यान करते हैं, परन्तु जब आत्मा के बारे में व्याख्यान करते हैं, तब गीता का श्लोक या उपनिषद् के वाक्य को उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं।

क्या वेद में आत्मा के स्वरूप को बतलाने वाले स्पष्ट मन्त्र नहीं हैं?...ऐसा लगता है कि वेद में पूर्णता नहीं है और गीता में पूर्णता है। -मुकुट बिहारी, जयपुर।

समाधान- सामान्यतः व्याख्याता अथवा उपदेशक की दृष्टि श्रोता पर रहती है। कुशलवक्ता-उपदेशक जिस स्तर का श्रोतृवर्ग है, उसी स्तर पर विषय प्रतिपादन करता है। यदि वक्ता अपने स्तर पर वक्तव्य दे और श्रोता निम्नस्तरीय हों, तो सामान्यतः श्रोता अथवा आयोजक का कथन होता है कि बात सिर के ऊपर से निकल गई। सम्प्रति किस्से-कहानियाँ-चुटकुले सुनाकर मध्य में एकाध मन्त्र का कोई श्लोक सुनाने वाले कुशल वक्ता माने जाते हैं। गम्भीर शास्त्रीय विषयों के श्रोता कितने हैं?

श्रीमद्भगवद्गीता अनेक कारणों से विश्वजनमानस में अपनी पहचान के कारण लोक विश्रुत है। इसके द्वितीय अध्याय में शरीर की नश्वरता तथा आत्मा के अमरत्व का निर्देश अति सरल शब्दों में उपलब्ध है। ऐसे में वक्ता उन्हीं श्लोकों

१. अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः -१८

२. न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। -२०

३. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।। -२२

आदि-आदि को प्रायः उद्धृत कर देते हैं। इसमें वेद की अपूर्णता तथा गीता की पूर्णता देखना-मानना उचित नहीं है। वेद में आत्मा के स्वरूप प्रतिपादक अनेक मन्त्र हैं। यहाँ संकेतमात्र प्रस्तुत हैं-

वेद में आत्मा के लिए अमर्त्य, जीव, पुरुष, आत्मा, अश्नः शब्दों का प्रयोग उपलब्ध है। उक्त शब्द आत्मा के बोधक तो हैं ही, साथ ही उसके स्वरूप के भी परिचायक हैं। तद्यथा-

१. अमर्त्य/जीव- आत्मा के सम्बन्ध में यह सुविज्ञात है कि वह अमरणधर्मा है और शरीर मरण धर्मा है। अमर्त्य= अमरणधर्मा आत्मा अपने कृतकर्मानुसार एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त करता रहता है। मन्त्र है-

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभि**रमर्त्यो** मर्त्येना सयोनिः।।
ऋ. १.१६४.३०

मन्त्र में जीव के साथ अमर्त्य शब्द प्रयुक्त है तथा यह (अमर्त्य) जीव के विशेषण रूप में है। इसी सूक्त के एक अन्य मन्त्र (३८) में अमरणधर्मा-आत्मा को मरणधर्मा-शरीर के साथ होकर अपनी इच्छा (राग-द्वेष) अथवा कृतकर्मानुसार कभी उन्नति तथा कभी अवनति अर्थात् उच्चावच शरीरों अर्थात् उत्कृष्ट व निकृष्ट योनियों में जाने का स्पष्ट वर्णन है-

अपाङ् प्राङेति **स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः**
ऋ. १.१६८.३८

महर्षि दयानन्द ने 'अमर्त्य' शब्द का अर्थ मरणधर्म-रहित जीव किया है। आचार्य यास्क ने -'**अपाञ्चति प्राञ्चति** स्वधया गृभीतो**ऽमर्त्यो आत्मा मर्त्येन मनसा** सह'- नि. १४.२३ अमर्त्य का अर्थ आत्मा तथा मर्त्य का अर्थ मन किया है।

एक अन्य मन्त्र-'तव **शरीरं पतयिष्ण**वर्वन्...' में शरीर को पतनशील-नष्ट होने वाला कहा है। यजुर्वेद में 'भस्मान्तं शरीरम्' कहकर इसकी नश्वरता का स्पष्ट वर्णन है। साथ ही आत्मा के एक शरीर-योनि से दूसरे शरीर-योनि में जाने का वर्णन भी द्रष्टव्य है-

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।

अपो वा गच्छ यदि ते तत्र हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः।।

२. पुरुष- वेद में शरीर की उपमा 'पुर' से दी गई है। तद्यथा-

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

-अथर्व १०.२.३१

शरीर रूपी पुर में रहने के कारण आत्मा को पुरुष कहा गया है। सृष्टि रूपी पुर में रहने के कारण ईश्वर को भी वेद में पुरुष कहा गया है। तद्यथा-

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः -ऋ. १०.९०.१

यास्क ने पुरुष का निर्वचन-'पुरि शयनात् पुरुषः'

-निरुक्त २.३

पुर में शयन करने के कारण पुरुष है। आत्मा शरीर रूपी पुर तथा ईश्वर सृष्टि रूपी पुर में निवास के कारण पुरुष है।

अथर्ववेद में जीवात्मा रूपी पुरुष का वर्णन करते हुए कहा है कि-

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः।।

अथर्व ११.४६.१४

मन्त्र में गर्भ के अन्दर प्राणन् आदि क्रिया का कर्त्ता तथा जन्मग्रहण करने वाला होने से यहाँ पुरुष आत्मा/जीव का बोधक है।

३. अश्नः - वेद में ईश्वर को अनश्नन्=अभोक्ता तथा जीव को अत्ता=भोक्ता कहा गया है। मन्त्र है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

ऋ. १.१६४.२०

जीव-आत्मा स्वकृत कर्मों के फल का भोक्ता है। इसे एक अन्य मन्त्र में अश्नः कहा गया है-

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः। ऋ. १.१६४.१

ऊपर आत्मा के स्वरूप प्रतिपादक मन्त्र अतिसंक्षेप में उद्धृत किए गए हैं। आशा है वेद की पूर्णता को लेकर आपकी शङ्का अपास्त हो जाएगी। वेद का स्वाध्याय करने पर इससे अधिक मन्त्र आपको सुलभ होंगे।

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

- मन्त्री

'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ५ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती है, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। इस पुस्तक की छपाई में एक प्रति का खर्च लगभग १०० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १०० आदि।**

१०० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	२१००/- रु.
	३० प्रतियाँ	३१००/- रु.
	५० प्रतियाँ	५१००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	११०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

३१ अगस्त पुण्यतिथि पर विशेष

कल्याण की देवी: शिवदेवी

रामनिवास 'गुणग्राहक'

किसी सामान्य पुरुष के महापुरुष बनने की यात्रा में निश्चित रूप किसी देवी का बहुत बड़ा हाथ होता है। चाहे वह हाथ माँ के रूप में हो या पत्नी के रूप में, चाहे वह प्रत्यक्ष प्रबल सहयोग हो या मौन साधना के रूप में। हम इतिहास से ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करने की अपेक्षा इस कल्याण की देवी की मौन साधना को उसके थोड़े से जीवन प्रसंगों के माध्यम से आर्य जनता के सामने रखना चाहते हैं, जिसने जीवन के सच्चे पथ से भटके हुए मुंशीराम को महात्मा मुंशीराम बनाकर स्वामी श्रद्धानन्द बनने के उस पथ पर डाल दिया, जिसे स्वामी श्रद्धानन्द ने स्वयं 'कल्याण मार्ग का पथ' स्वीकार किया है। हम सब भलीभाँति जानते हैं कि एक बड़े पुलिस अधिकारी का लाडला पुत्र मुंशीराम पतन के प्राय: सभी पथों पर चहलकदमी कर चुका था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान सुनकर, उनसे वार्त्तालाप करके भी मुंशीराम नास्तिकता के गड्ढे से निकलने के लिए छटपटाता तो रहा, लेकिन चाहकर भी निकल नहीं पाया। हृदय में एक ऐसा ज्वार तो महर्षि से मिलकर उठा जिसने नास्तिकता की जड़ें हिला दीं, लेकिन पिछले जीवन के ऐसे कटु अनुभव अभी प्रबल थे, जो धर्म और ईश्वर के प्रति विश्वास को सिर नहीं उठाने दे रहे थे। महर्षि दयानन्द के विचारों का बीज हृदय में सम्भाले रखकर मुंशीराम अपना जीवन अपने ढंग से ही जीते रहे। जैसे आवश्यक सामान से भरी हुई अलमारी में असावधानी से रखी गई बड़ी मूल्यवान् वस्तु भी दबी-छिपी पड़ी रहती है, ठीक उसी प्रकार से मुंशीराम के मन-मस्तिष्क में महर्षि दयानन्द से जुड़े प्रसंग पड़े थे।

मुंशीराम के जीवन परिवर्तन में ज्ञात-अज्ञात कितने ही ऐसे कारक होंगे जिनकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भूमिका रही होगी, लेकिन जीवन-परिवर्तन में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक व्यक्ति का स्वयं का विवेक और उसकी संकल्प शक्ति ही होती है। अगर मनुष्य संसार रूपी पाठशाला में मिलने वाले अनुभवों को सही ढंग से शिक्षा के रूप में नहीं स्वीकारता तो संसार के सारे उपदेश, सारी शिक्षाएँ बोलने से सुनने तक सिमट कर रह जाती हैं। मुन्शीराम का प्रारम्भिक जीवन चाहे कितनी ही अन्धी गलियों में भटकता फिरा हो, उनकी जीवन-यात्रा के जानकार यह अवश्य स्वीकारते हैं कि उनके अन्दर मननशीलता सदैव बनी रही। उस मननशीलता ने जीवन से जुड़े हर परिवेश को परखा और तत्काल उस पर प्रतिक्रिया दी। ऐसी जीवन्त मननशीलता व्यक्ति को छोटी-मोटी टक्कर-ठोकर देकर सही रास्ते पर ले आती है। आवश्यक नहीं कि वह ठोकर भयंकर या घातक हो, मननशील व्यक्ति कभी-कभी तो छोटी सी घटना को एक बड़ी शिक्षा के रूप में लेकर अपने जीवन की दिशा ही बदल देते हैं। पत्थर की मूर्तियों पर चूहे-कुत्ते आदि प्राणियों को अपने ढंग का कौतुक करते हुए कितने लोगों ने नहीं देखा, लेकिन बालक मूलशंकर जैसा कायाकल्प किसी का क्यों नहीं हुआ? मुंशीराम के जीवन में भी कोई निराली या विलक्षण घटना हुई हो, ऐसा कुछ कहीं नहीं मिलता। मुंशीराम ने भी घर-परिवार व समाज की सामान्य सी घटनाओं व वार्त्तालापों को जीवन-निर्माणक शिक्षा के रूप में लिया।

ऐसी ही एक सामान्य सी घटना ने मुंशीराम की चेतना को ऐसी चुनौती दे डाली कि अन्तर्द्वन्द्व से उपजी संवेदनाओं ने उन्हें 'कल्याण मार्ग का पथिक' बना दिया। घटना छोटी इसलिए थी कि शराब के व्यसन से त्रस्त परिवारों में पति-पत्नी के बीच वह सब प्राय: होता रहता है जो मुंशीराम जी के घर हुआ था। मुंशीराम के मन-मस्तिष्क को गहराई तक आन्दोलित करने में जिसने सबसे बड़ी भूमिका निभाई, वह थी शिवदेवी की निश्छलता, सरलता और सेवा भावना। बारह वर्ष की छोटी आयु में शिवदेवी जी का मुंशीराम के साथ विवाह हो गया था। पुरानी परम्परा के अनुसार वधु विवाह के तुरन्त बाद ससुराल नहीं जाती थी। एक-दो वर्ष बाद गौना, मुकलावा या द्विरागमन होता था। मुन्शीराम के जीवन-परिवर्तन के समय शिवदेवी की आयु चौदह-पन्द्रह

वर्ष की थी। इस छोटी आयु में तो जीवन में अल्हड़ता रहती है, उतावलापन रहता है। शिवदेवी सच में शिव अर्थात् कल्याण की देवी थी। शिवदेवी की माँ ने किशोरवय पुत्री को ससुराल में रहने-सहने के अच्छे संस्कार दिये थे। हम माता और पुत्री दोनों को धन्य मानते हैं कि माँ ने उत्तम संस्कार दिये और पुत्री ने उन्हें जीवन के धरातल पर स्वीकार कर एक श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया। ससुराल में आकर शिवदेवी के व्यवहार की एक झलक स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा-'कल्याण मार्ग का पथिक' में इस प्रकार दी है- ''बरेली आने पर शिवदेवी का यह नियम हुआ कि दिन का भोजन तो मेरे पीछे करती, परन्तु रात को जब कभी मुझे देर हो जाती, माँ और पिता जी भोजन कर चुकते तो मेरा और अपना भोजन ऊपर मँगा लेती और जब मैं लौटता तो उसी समय अंगीठी पर गरम करके मुझे भोजन कराती, पीछे स्वयं खाती।''

चाहे आधुनिका नारी को यह सोच बचकानी लगे और वह इस पर कैसे ही तर्क दे, मगर जब तक देश के स्त्री-पुरुष अपने जीवन को किसी उदात्त मर्यादा में नहीं बाँधते, जब तक कर्त्तव्यों को अधिकारों से अधिक मूल्यवान् नहीं मानते-तब तक उनके जीवन से कोई मूल्यवान् मानवीय उपलब्धि नहीं मिल पाती। शिवदेवी के जीवन में पति के प्रति अगाध अपनापन नहीं होता, अपने को पति के लिए न्यौछावर करने की भावना न होती तो मुंशीराम का हृदय इतना आन्दोलित नहीं हो पाता। पाठक यह जानने को उत्सुक होंगे कि आखिर वह कौन-सी विशेष घटना थी, जिसके कारण मुंशीराम का जीवन पाप-पंक से निकलकर पुण्य-अंक (पुण्य की गोद) में आ बैठा। तो आइये स्वामी श्रद्धानन्द के ही शब्दों में उसका प्रेरक आनन्द लें। लाला त्रिवेणी सहाय के घर मित्रों के साथ मिलकर कुछ अधिक ही नशीली शराब पीने और मुजरा देखने के बाद मित्रों के सहारे गिरते-पड़ते मुंशीराम घर पहुँचे। बरामदे में पहुँचकर जब शिवदेवी के कोमल हाथों ने उन्हें सम्भाला तो उल्टियाँ (वमन) होने लगीं। अन्दर का सबकुछ जब बाहर निकल गया, शिवदेवी ने हाथ-मुँह धुलाकर पलंग पर सुला दिया। स्वामी जी लिखते हैं- **''मैंने अनुभव किया कि मानो मातृशक्ति की छत्रछाया के नीचे निश्चिन्त लेट गया हूँ। पथराई आँखें बन्द हो गईं और मैं गहरी नींद सो गया। रात का शायद एक बजा था जब मेरी आँखें खुलीं, वह १४-१५ वर्ष की बालिका मेरे पैर दबा रही थी।...गर्म दूध अंगीठी से उतारकर उसमे मिश्री मिलाकर मेरे मुँह से लगा दिया। दूध पीने पर होश आया, उस समय अंग्रेजी उपन्यास मगज में से निकल गए और गुसाईं जी के खींचे दृश्य सामने आ खड़े हुए। मैंने उठकर और पास बैठकर कहा-''देवी! तुम बराबर (लगातार) जागती रहीं और भोजन तक नहीं किया। अब भोजन करो।'' उत्तर ने मुझे व्याकुल कर दिया, परन्तु उस व्याकुलता में भी आशा की झलक थी। शिवदेवी ने कहा-''आप के भोजन किये बिना मैं कैसे खाती? अब भोजन करने में क्या रुचि है?'' उस समय की दशा का वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सकता। मैंने अपनी गिरावट की दोनों कहानियाँ सुनाकर देवी से क्षमा की प्रार्थना की, परन्तु वहाँ उनकी माता का उपदेश काम कर रहा था-''आप मेरे स्वामी हैं, यह सबकुछ सुनाकर मुझ पर पाप क्यों चढ़ा रहे हो? मुझे तो यह शिक्षा मिली है कि मैं नित्य आपकी सेवा करूँ।'' उस रात हम बिना भोजन किये दोनो सो गए और दूसरे दिन से मेरे लिए जीवन ही बदल गया।''**

ऐसी ही एक अन्य घटना की झलक देखिये, मुंशीराम पर शराब की उधारी का बिल बढ़ने लगा तो चिन्ता भी बढ़ने लगी। स्वामी जी लिखते हैं-''शिवदेवी जी ने भोजन कराते समय मेरी चिन्ता का कारण पूछा। अब तो कोई बात आपस में गुप्त रह नहीं सकती थी। वेद के उपदेशानुसार तो मानो मेरा विवाह पिछली रात ही हुआ था, मैंने सब कुछ स्पष्ट कह दिया। देवी ने कुल्ला करवा के हाथ-मुँह धुलवाये और अपना भोजन पाने से पहले ही हाथ के सोने के कड़े उतार दिये। मैं चकित रह गया। देवी ऐसा कैसे हो सकता है? तुम्हें आभूषित करने के स्थान में तुम्हें आभूषणों से रहित करने का पाप कैसे लूँ?...देवी ने दूसरी जोड़ी दिखाकर कहा-एक जोड़ी पिता ने और दूसरी श्वसुर महोदय ने दी थी, इनमें से एक व्यर्थ पड़ी है। यह मेरा माल है और जब तन आपका है तो इसके लेने में क्यों संकोच है? आपकी चिन्ता दूर करने का यह सौदा मँहगा नहीं है। ''पाठक

वृन्द! शिवदेवी के रूप को देखकर श्रद्धानन्द जी लिखते हैं''-वैदिक आदर्श से गिरकर भी जो सतीत्व धर्म का पालन पौराणिक समय में आर्य महिलाओं ने किया है, उसी के प्रताप से भारत भूमि रसातल को नहीं पहुँची और उसमें पुनरुत्थान की शक्ति अब तक विद्यमान है-यह मेरा निज का अनुभव है।'' लगभग ऐसे ही विचार ऋषि दयानन्द ने व्यक्त किये थे।

नारी गौरव की अमूल्य मणि माता शिवदेवी के तप, त्याग और समर्पित सेवाभाव का मूल्यांकन करने वाला कोई आलेख मैंने कभी किसी पुस्तक या किसी मासिक-पाक्षिक आर्य पत्र में नहीं पढ़ा। जिस देवी को स्वामी श्रद्धानन्द जी ऐसे भावपूर्ण शब्दों में स्मरण करते हों, वह देवी नारी जाति के लिए एक श्रेष्ठ आदर्श और पुरुष समाज के लिए प्रेरणा-स्रोत हो सकती है। ३१ अगस्त १८९१ को प्रात:काल परलोक पधारने से पहले शिवदेवी पति के लिए जो अमर सन्देश लिख गईं, उसके शब्द थे-''बाबूजी! मैं अब चली। मेरे अपराध क्षमा करना। आपको तो मुझसे अधिक रूपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जाएगी, परन्तु इन बच्चों को कभी मत भूलना। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो।'' देवी के इस अन्तिम सन्देश को हृदय में रखकर मुंशीराम जी ने बच्चों की माँ और पिता दोनों की भूमिका निभाने का संकल्प लिया और ईश्वर से प्रार्थना की कि वह इस संकल्प को पूर्ण करने की शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करे।

ऋषि दयानन्द ने कहा था

सत्य और असत्य क्या है?

जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। जो-जो सृष्टिक्रम से अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह-वह सब असत्य है, जैसे कोई कहे कि बिना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

(स. प्र. स. ३)

ऋषि मेला २०१८ हेतु स्टॉल आवंटन

प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १६, १७, १८ नवम्बर शुक्र, शनि, रविवार २०१८ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्य जगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की स्टॉल लगती हैं। प्रति स्टॉल किराया १००० रु. निर्धारित है। जिसकी राशि पहले जमा होगी उसी क्रम से स्टॉल का आवंटन होगा। जिन महानुभावों को जितनी स्टॉल की आवश्यकता है, उसी अनुरूप राशि बैंक ड्राफ्ट द्वारा या नकद जमा करावें।

स्टॉल सुविधा:- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- **१.** स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक से स्टॉल संख्या, राशि की रसीद दिखाकर प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नवम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित किया जाएगा। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोट:**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

आर्यसमाज अकालियों की राह पर

प्रो. धर्मवीर

कलम बोलती है और पूरी ऊर्जा से बोलती है, पर सबकी नहीं बोलती। जिसकी कलम में सत्य, नैतिकता और आत्मबल की स्याही होती है, बस वही कलम बोलती है, बाकि तो कोई औपचारिकता पूरी करके बगल से निकल जाती है, कोई डरकर हकला जाती है, कोई स्वार्थ, क्रोध या लालच में आपना आक्रोश निकालने के लिये बौखला पड़ती है।

कलम बोली, दयानन्द की बोली, गुरुदत्त की बोली, लेखराम की बोली और उसी परम्परा में यह कलम चलती ही गई।

जो लेख हम पाठकों के समक्ष रखने जा रहे हैं, वह ऐसी ही एक कलम की आवाज है जिसने कभी गलत को गलत कहने से मुँह नहीं छुपाया, भले ही वह गलत अपना ही क्यों न हो।

प्रतिष्ठित आर्यपत्र जनज्ञान मासिक में प्राय: ३५ वर्ष पूर्व छपे इस लेख के शीर्षक को पढ़कर एक बार लगा कि यह उस समय की घटना पर लिखा गया है, इसका आज क्या लाभ, परन्तु धर्मवीर की लेखनी का स्वाद मुँह लगा हुआ है सो लेख पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते ऊर्जा और उत्साह की जो अनुभूति हुई, उसे अन्यों में ना बाँटे तो यह स्वार्थ ही कहलायेगा। इसलिए इस ऊर्जा के पुंज को पाठकों तक पहुंचाया जा रहा है। बस इतना ही।

-सम्पादक

जब स्वामी दयानन्द का कमक्षेत्र में पदार्पण हुआ, उस समय भारत की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। जागृति के छुटपुट प्रयत्न ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज आदि के रूप में हो रहे थे, परन्तु सारा प्रयत्न सागर में बिन्दुओं जितना था, राजनैतिक दृष्टि से देश पराधीनता के दौर में था। १८५७ का स्वातन्त्र्य समर असफल हो चुका था अत: समाज में निराशा का वातावरण होना स्वभाविक था। धार्मिक नेताओं का सारा समय कर्मकाण्ड की प्रक्रियाओं को कैसे शुद्ध रूप दिया जाये, इसी में व्यतीत होता था। सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्ता सरकार की चापलूसी करके समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने में लगे हुए थे। ऐसे समय में राष्ट्र किधर जाये यह बतलाने वाला कोई नहीं था। किंकर्तव्यविमूढ़ जनता चौराहे पर खड़ी थी। ऐसे समय दयानन्द का कर्म पथ में अवतीर्ण होना राष्ट्र के लिये ईश्वरीय वरदान सिद्ध हुआ। इस संसार में एक-एक क्षेत्र में अद्‌भुत कार्य करने वाले अनेक लोगों के नाम गिनाये जा सकते हैं, परन्तु चारों दिशाओं में अभूतपूर्व कार्य करने की क्षमता का धनी दयानन्द ही था। उन्होंने उस समय के सभी धार्मिक मञ्चों से यह आग्रह किया था कि वे सत्यासत्य का निर्णय कराके सत्य को स्वीकार कर लें। सभी धार्मिक नेताओं को व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से एकत्रित कर सत्य के निर्णय का प्रयत्न किया, परन्तु कोई भी अपनी पुरानी लीक को त्यागने को तैयार नहीं था, जबकि स्वामी दयानन्द को नवीनता और पुरातनता में एक से कोई प्रतिबद्धता नहीं थी। वे तो केवल सत्य के आग्रही थे। यही कार्य दुनिया में सबसे कठिन है। सत्य कहने के लिए अपरिमित आत्मिक बल की और सत्य को क्रियान्वित करने के लिए संसार से लड़ने की शक्ति चाहिए, यह हम स्वामी दयानन्द के जीवन में देखते हैं। जैसे ही स्वामी जी कार्य क्षेत्र में उतरे, उनके साथ चलने वालों की कमी न रही। उस समय स्वामी जी के साथ चलने वाले लोग वे थे, जो समाज के लिए त्याग करने की इच्छा रखते थे-जिनमें समाज और राष्ट्र के कल्याण की भावना थी और इस संघर्ष में ही जिन्हें अपने जीवन का लक्ष्य दिखायी देता था। आर्यसमाज के प्रगतिशील किन्तु सत्य और गौरव को प्रदान करने वाले प्राचीन आधार के कारण भारतीय अस्मिता जगाने में समर्थता के कारण इस ओर बुद्धिजीवियों का आकर्षित होना अनिवार्य था।

समाज में बन्धन और जड़ता को जब भी तोड़ा गया है, तभी क्रान्ति करनी पड़ी है। सब कुछ विशृंखलित हो जाता, ऐसे समय सिर पर कफन बाँधकर बढ़ने वाले ही आगे आ पाते, जो सोचा हुआ करने के लिए मजबूर होते हैं, जो देश और जाति की सेवा में अपना लाभ देखते हैं,

जिन्हें राष्ट्र की जीवन्तता में अपना यौवन प्रफुल्लित होता प्रतीत होता है। इस प्रकार के आन्दोलन से समाज में मुक्ति का वातावरण बनता है, स्वतन्त्रता की अनुभूति होती है। यही सब आर्यसमाज के साथ हुआ। जब किसी भी मञ्च से स्वामी दयानन्द की यह आशा पूरी न हुई और उनके विचारों को स्वीकार करने वाले अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी, तब एक संगठन की आवश्यकता अनुभव की गई और सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की गई। उस समय ब्राह्मसमाज की स्थिति के कारण नामकरण में आर्यसमाज शब्द सहज बन गया। सारा लक्ष्य 'आर्य' शब्द में निहित है। 'समाज' में तो किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती, परन्तु सिद्धान्त और आधार आर्यत्व में समाविष्ट हैं।

आर्य शब्द प्राचीन भारतीय गौरव को उजागर करने वाला शब्द है। आर्य शब्द में वैदिक काल से प्रारम्भ कर जो भी आज तक इस देश के निवासियों ने किया है और माना है उसका समावेश होता है। स्वामी दयानन्द ने देखा कि गंगोत्री की निर्मल धारा वर्तमान की हुगली तक आते-आते मलिन होने के कारण इसे शुद्ध करना अनिवार्य है। शिक्षा की कमी, सामाजिक चेतना का अभाव और राजनैतिक पराधीनता के कारण हमारा चिन्तन संकुचित और मलिन हो गया था। उसे सुधारना था, उचित दिशा देनी थी, परन्तु सबसे बड़ी बाधा थी उस समय के धार्मिक और सामाजिक नेता, जिन्हें सत्य के स्वीकार करने में सरलता से प्राप्त होने वाला वैभवपूर्ण जीवन छोड़ना स्वीकार नहीं था। उन्हें आन्दोलित करने के लिए निश्चित और स्पष्ट लक्ष्य को संगठित रूप से प्राप्त करने वाले संगठन की आवश्यकता थी, जो आर्यसमाज के रूप में सामने आया।

किसी भी मत, सम्प्रदाय से पहली भिन्नता है मुख्य उद्देश्य की। ''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।'' आज तक के सारे संगठन थोड़े से लोगों का, थोड़े से स्थान पर रहने वालों का और एक युग के ही लोगों का उपकार करने में विश्वास रखते हैं। परन्तु यहाँ तो मित्र, शत्रु, दूरस्थ या निकटस्थ सभी लोगों का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है। शेष सब उद्देश्य गौण हैं। उपकार का साधन बतलाया है ''सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग।'' इसके बिना उपकार संभव ही नहीं। **आर्यत्व में सत्य के स्वीकारने की क्षमता पहली और अपरिहार्य शर्त है।** परिणामस्वरूप सारे धर्म ध्वजियों को एक चोट ने दहला दिया और संसार के सभी वर्गों के लोगों को आर्यसमाज प्रिय लगा और शीघ्रतापूर्वक लोगों ने इसे स्वीकार करना प्रारम्भ किया। इस समाज की इस विशेषता के कारण यह संसार का धर्म है। इसमें एक समय और दूसरे समय, एक देश और दूसरे देश में किसी भी प्रकार का अन्तर्विरोध नहीं है। इससे बड़ी प्रगतिशीलता और इससे पुरातन भी कुछ नहीं हो सकता। बिना सत्य को स्वीकार किये संसार में कोई प्रगतिशील नहीं बन सकता। आवश्यकता और उपयोगिता को समझना और स्वीकार करना, इस प्रवृत्ति को सहज मानसिकता के रूप में ले पाना बिना सत्य से प्रतिबद्ध हुए संभव नहीं है। आर्यसमाज के शेष नियम सत्य को जानने और संसार का उपकार करने के उपाय-मात्र हैं।

समय के साथ संगठन के पास सम्पत्ति और साधनों का होना स्वाभाविक है। विचारों के प्रसार के लिए संगठन की आवश्यकता है, क्योंकि व्यक्ति की अपेक्षा संस्था ही चिरजीवी और स्थायी हो सकती है, जो समाज के साथ चल सके, परन्तु संगठन में स्थायित्व आते ही आन्दोलन का रूप एक संस्था में बदल जाता है और उसकी सम्पत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा पर दृष्टि होना सहज सम्भव है। कालान्तर में शिथिलतावश ऐसे लोगों का आधिपत्य हो जाता है और वे जो कुछ हैं, स्वयं ही संस्था के नाम से करते जाते हैं।

आर्यसमाज वेद-संस्कृति मूलक होने और भारत में इसका प्रादुर्भाव होने के कारण यहाँ के भौगोलिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश में ढल जाने के कारण यहाँ के हानि-लाभ से संस्था के हानि-लाभ व उद्देश्यों से जोड़ना सिद्धान्तों के साथ अन्याय करना होगा। आर्यसमाज का राष्ट्रीयता से कोई विरोध नहीं बनता। भारत के आर्यों का प्रथम लक्ष्य इस देश के लोगों का उपकार करना, इस देश की उन्नति करना व संसार भर के लिए मानवता के विकास में सहयोग देना है।

धीरे-धीरे स्थानीय संस्थाओं और व्यक्तियों के हितों से कुछ लोगों ने आर्यसमाज को जोड़ लिया और उसे ही

आर्यसमाज का हिताहित समझने और कहने लगे। इधर इस प्रकार के कुछ सुधारकों ने आर्यसमाज को अल्पसंख्यक बनाने की घोषणा कर दी (सं. २०३९ में)। ऐसा करने के पीछे कहा गया कि हमें अपने स्वरूप को बचाने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। वास्तविकता यह है कि ऐसे लोग अपने निज स्वरूप और स्वायत्तता को इस बहाने सुरक्षित रखना चाहते हैं। उनकी संस्थाओं में हो रही अनियमितता को अल्पसंख्यकों का हित बतलाकर सरकार और समाज की आंखों में धूल झोंकना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। ऐसे सुधारकों में ऐसे लोग भी हैं, जो आर्यसमाज की पहचान को मूर्तिपूजा न करने तक सीमित रखते हैं। फिर तो यह धर्म मुसलमानों से अधिक सहज स्वीकार्य किसे हो सकता है? इस मान्यता में और कन्नौजियों के चौके चूल्हे के धर्म में क्या विशेषता रह जायेगी? **मूर्तिपूजा तो एक बुराई को हटाना मात्र है। मूर्तिपूजा न करने वाला आर्य होने से ईमानदार और सदाचारी सनातनी ही भला है।** क्योंकि शराबी मांसाहारी, जुआरी और व्यभिचारी भी गैर-मूर्तिपूजक हो सकता है। क्या ऐसे आर्यसमाजी से इस देश का उद्धार संभव है?

आर्यसमाज का जन्म तो पाखण्ड के खंडन के लिए हुआ है, और पाखण्ड का जन्म मनुष्य के मन से होता है-बाह्य वस्तुओं या स्थानों से नहीं, क्योंकि जो जैसा कहे, वैसा न करे, यही मिथ्याचार है-यही पाखण्ड है। स्वामी दयानन्द की परिभाषा है कि मन-वचन-कर्म की एकरूपता ही सत्य है। यही कठिन कार्य पाखण्डियों के लिए सम्भव नहीं। अतः दायें-बायें रास्ते खोजे जाते हैं। इस प्रकार संसार का उपकार करने वाली संस्था राष्ट्र और समाज का हित करने योग्य भी नहीं रह पाती। **आर्यसमाज का जन्म देशवासियों द्वारा यहाँ के धर्म, साहित्य, संस्कृति और राष्ट्रीयता की रक्षा करने के लिए हुआ था, जिससे संसार का उपकार किया जा सके। यदि वह इसके द्वारा सम्भव नहीं तो उसे भी कूड़े के ढेर पर फेंक दिया जाना चाहिए, जहाँ संसार का पाखण्ड पड़ा है।**

कुछ लोगों का विचार है कि यदि आर्यसमाज अल्पसंख्यक हो जाये तो जन्मना सभी आर्यसमाजी होंगे और हमें बिना प्रयत्न के ही आर्यसमाज के विस्तार का अवसर मिल जायेगा। यह विचार अज्ञानतापूर्ण है, क्योंकि स्वामी दयानन्द ने ऐसा एक भी साधन आर्यसमाज को नहीं दिया, जिससे बिना प्रयास कोई लाभ मिल सके। सत्य का ग्रहण दुनिया का सबसे कठिन कार्य है। यह किसी को कहीं जन्म लेने से नहीं मिल जाता। विद्या की पात्रता जन्म से नहीं आती। उपकार करने की क्षमता जन्म से नहीं आती। अतः आर्यसमाजी तो प्रयत्न से और बुद्धिपूर्वक बना जाता है। यह अनायास हाथ लगने वाली वस्तु नहीं। जो लोग जन्म से अल्पसंख्यक बनकर तुच्छ स्वार्थों को पूरा करने के इच्छुक हैं, उनमें और बाल बढ़ाकर अलग सिखिस्तान माँगने वालों में क्या अन्तर है?

इस प्रकार आर्यसमाज के सुधार के नाम पर और उसके स्थायित्व के नाम पर यदि इन तुच्छ उपायों की आवश्यकता पड़े तो उसके अस्तित्व की आवश्यकता ही क्या है? अब प्रश्न उठता है कि हिन्दी को हम स्वीकार करना चाहते हैं तो इसमें अल्पसंख्यक बनकर नहीं अपितु राष्ट्र की आवश्यकता के लिए यह करना है। वेद को मानते हैं तो क्या अल्पसंख्यक होने के लिये वैदिक दर्शन को मानते हैं, राम को महापुरुष मानते हैं, कृष्ण को अवतार नहीं मानते-इस सबका उद्देश्य अल्पसंख्यक बनना तो नहीं है। वास्तव में आर्यसमाज को हिन्दुओं को बचाने वाला संगठन समझकर जो बावेला मचाया जा रहा है, वह जीर्ण-शीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है, जिसे समाप्त करने के लिए आर्यसमाज का जन्म हुआ था। यह प्रवृत्ति है कि अपने को बचाने के लिए संकुचित करते जाना। इसी मनोवृत्ति के कारण भारतीयों ने अपने ही भाइयों को मुसलमान बनाया, ईसाई बनाया, अछूत बनाया और सारे प्रयत्न का एक ही उद्देश्य था अपने अस्तित्व को सुरक्षित करना, स्वयं को बचाना। इसी का परिणाम आज हमारे सामने विनाश के रूप में है। स्वामी दयानन्द ने इसी प्रवृत्ति का विरोध किया। उसे समाप्त करने का प्रयत्न किया। इसके लिए आर्यसमाज की स्थापना की। उसी समाज को जीने के लिए विनाशकारी प्रवृत्ति को अपनाना पड़े, इससे अधिक खेद-जनक बात क्या हो सकती है? आर्यसमाज का लक्ष्य राष्ट्रीयता की दृष्टि से बृहत्तर भारत और धार्मिक दृष्टि से समस्त विश्व को आर्य बनाना है।

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ– प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***– आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***– अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***– गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***– वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***– इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***– योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता

(१६ से ३१ जुलाई २०१८ तक)

१. श्री एस.के. शारदा, अजमेर २. श्रीमती प्रतिभा राजगुरु, अजमेर ३. डॉ. मृत्युञ्जय शर्मा, अजमेर ४. श्री कृष्ण कुमार जांगिड, अलवर ५. श्री रञ्जन हांडा, दिल्ली ६. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट ७. स्वस्तिकॉम चेरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती ८. श्री अशोक राव, लातूर ९. श्री गौरव यादव व श्रीमती प्रीति यादव, नई दिल्ली १०. बाबूलाल चौहान, अजमेर ११. श्री श्यामसुन्दर व श्रीमती कान्ता राठी, दिल्ली १२. श्री सन्तोष अरोड़ा, अजमेर १३. श्री ईश्वरलाल, निम्बाहेड़ा १४. श्री अनिल जाखड़, झज्जर १५. राहुल, किशन, रावतराम व लक्ष्मण, जोधपुर १६. श्री मनोज मेहता, बारां १७. श्री जितेन्द्रप्रताप शास्त्री, रेवाड़ी १८. श्री ईश्वर दयाल माथुर, जयपुर।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(१६ से ३१ जुलाई २०१८ तक)

१. श्रीमती पुष्पलता उपाध्याय, अजमेर २. श्रीमती सञ्जना शर्मा, अजमेर ३. श्री प्रेम शर्मा, अजमेर ४. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैन्ट ५. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली ६. श्री अतुल कुमार गुप्ता, अलवर ७. श्री दुर्जनसिंह (प्रणव मुनि), लखनऊ ८. श्री रामलाल अरोड़ा, अजमेर ९. श्री सत्यानारायण वर्मा, अजमेर १०. सुश्री सुकृति अमर जितुरी, अजमेर।

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती वैदिक प्रचार ट्रस्ट द्वारा परोपकारिणी सभा के माध्यम से प्रतिवर्ष आर्यसमाज के गुरुकुलों को सहायता राशि प्रदान की जाती है। इस वर्ष निम्नांकित संस्थाओं को यह सहयोग राशि प्रदान की गई-

१. आर्ष कन्या गुरुकुल ट्रस्ट, पलवल २. गुरुकुल महाविद्यालय, हापुड़ ३. आर्ष कन्या गुरुकुल दधिया, अलवर ४. सर्वानन्द संस्कृत महाविद्यालय साधु आश्रम, अलीगढ़ ५. महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट, टंकारा ६. महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल व गौशाला एम.डी.एस., मेवात ७. आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज ८. कन्या गुरुकुल चामड़ अलीगढ़।

– परोपकारिणी सभा, अजमेर।

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

(स. प्र. ३)

२३ अगस्त पुण्यतिथि पर विशेष...

समर्पित पिता के समर्पित पुत्र : श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार को राष्ट्रीय और वैश्विक पटल पर ख्याति प्रदान कराने वाले व्यक्तियों में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का प्रमुख योगदान रहा है। शिक्षा, समाज और राजनीति के क्षेत्र में गुरुकुल ने जो प्रतिष्ठा अर्जित की है, उसमें इन्द्र जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका और सहयोग रहा है। वे उस सुयोग्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे जिन्हें गुरुकुल परिवार 'कुलपिता' के रूप में, और आर्यसमाज ऋषि दयानन्द के लिए सर्वात्मना समर्पित 'समाजसेवी' के रूप में तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास जिन्हें 'निडर नेता' के रूप में श्रद्धापूर्वक स्मरण करता है। वे स्वनाम धन्य थे महात्मा मुंशीराम, जो संन्यास धारण करके स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए। महात्मा जी इन्द्र जी के जन्मदाता पिता भी थे और शिक्षा-दीक्षा प्रदाता आचार्य भी। पिता से प्राप्त संस्कारों का अनुपालन करते हुए इन्द्र जी ने जीवनभर गुरुकुल, साहित्य, समाज और राष्ट्र की सेवा के लिए कार्य किया।

इनकी माताश्री का नाम श्रीमती शिवदेवी था। इन्द्र जी का जन्म ९ नवम्बर, १८८९ को पंजाब प्रान्त के जालन्धर नगर में हुआ। ये अपने चार बहन-भाइयों में सबसे छोटे थे। इनसे दो वर्ष बड़े भाई हरिश्चन्द्र थे। उनसे बड़ी दो बहनें थीं-वेदकुमारी और हेमकुमारी। अगस्त १८९१ में इन्द्र जी की माता जी का देहान्त हो गया। चारों बच्चों के पालन-पोषण का भार अब इनके पिता मुंशीराम पर आ गया। परिवार के जनों ने पुनर्विवाह का दबाव बनाया किन्तु मुंशीराम जी ने कहा कि अब मैं ही इनका पिता-माता बनकर इनका पालन-पोषण करूंगा। इन्द्र बचपन से ही दुर्बल थे, क्योंकि उनका एक ही फेफड़ा था। फिर भी उन्होंने इकहत्तर वर्ष तक सक्रिय रहकर कार्य किया।

शिक्षा-दीक्षा- इन्द्र जी और बड़े भाई हरिश्चन्द्र की प्राथमिक शिक्षा 'दुवाबा हाई स्कूल' में हुई। उसके पश्चात् दोनों को 'गुरुकुल गुजरांवाला' में प्रविष्ट करा दिया। ४ मार्च १९०२ को महात्मा मुंशीराम ने हरिद्वार के निकट कांगड़ी गाँव की भूमि में जब गुरुकुल की स्थापना की तो अपने साथ दोनों पुत्रों को भी ले गये और वहाँ उनको प्रवेश दिला दिया। इन्द्र जी ने गुरुकुल कांगड़ी में संस्कृत, हिन्दी, इंगलिश के साथ आधुनिक विषयों का भी अध्ययन किया और १९१२ में 'वेदालंकार' की उपाधि प्राप्त की। ये गुरुकुल के प्रथम स्नातकों में थे। स्नातक बनने के पश्चात् पिताश्री के आदेश से इन्होंने १९१४ से १९२२ तक गुरुकुल में अध्यापन कार्य किया। साथ ही गुरुकुल की सर्वोच्च उपाधि 'विद्यावाचस्पति' (पीएच.डी.) भी इन्होंने प्राप्त की।

इन्द्र जी के पिताश्री महात्मा मुंशीराम ऋषि दयानन्द की विचारधारा और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के दृढ़ अनुयायी थे। वही विचार और संस्कार इन्द्र जी के बने। डी.ए.वी. संगठन ने महर्षि दयानन्द वर्णित प्राचीन शिक्षा-पद्धति की उपेक्षा कर पाश्चात्य शिक्षा पद्धति अपने विद्यालयों में संचालित की। महात्मा मुंशीराम ने इससे क्षुब्ध होकर गुरुकुल पद्धति के अनुसार शिक्षा देने की घोषणा की और यह भी प्रतिज्ञा की कि जब तक गुरुकुल के निर्माण के लिए आवश्यक राशि कम-से-कम तीस हजार रुपये संग्रह नहीं हो जाते तब तक मैं अपने घर में कदम नहीं रखूंगा। तब गुरुकुल परम्परा के विरोधी कुछ लोगों ने मुंशीराम जी पर व्यंग्य कसा था कि 'इतने रुपये कौन देगा और कौन अपने बालकों को गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेजेगा!' मुंशीराम जी ने घोषणा से अधिक धन-संग्रह करके और अपने दोनों बालकों को गुरुकुल में प्रवेश दिलाने का स्वयं उदाहरण प्रस्तुत कर जहाँ अपने संकल्प को पूर्ण किया, वहाँ बालकों को प्राचीन एवं नवीन शिक्षा पद्धति का विद्वान् बनाकर ऋषि की पद्धति को सत्य सिद्ध कर दिखाया। ऋषि की शिक्षा-पद्धति को उपयोगी एवं व्यावहारिक रूप में प्रतिष्ठापित किया।

महात्मा मुंशीराम गुरुकुल काँगड़ी के लिए अपनी जमीन-जायदाद, प्रेस, दोनों बालकों और अपने जीवन का भी दान कर चुके थे। एक जालन्धर स्थित विशाल कोठी

अभी शेष थी जो दोनों बच्चों के नाम थी। एक दिन उसको भी दान करने का संकल्प मन में आया और गुरुकुल के नाम दानपत्र लिख दिया। दोनों पुत्रों को बुलाकर सहमति के लिए पूछा तो दोनों पुत्रों ने कोठी को दान करने की सहमति सहर्ष दे दी। इस प्रकार इन्द्र और हरिश्चन्द्र ने त्याग में पिता का अनुगमन कर स्वयं को सुयोग्य पुत्र सिद्ध कर दिया। पिता-पुत्रों का यह महान् त्याग था।

पारिवारिक जीवन- गुरुकुल काँगड़ी में अध्यापक के रूप में कार्य करते हुए इन्द्र जी का विवाह विद्यावती से हुआ, जो गुरुकुल के ही अध्यापक श्री विष्णुमित्र शर्मा की सुपुत्री थी। इनकी तीन सन्तानें हुईं- पुत्र जयन्त, पुत्रियाँ- पद्मा और पुष्पा। जब पुष्पा तीन वर्ष की थी, दुर्भाग्य से इन्द्र जी की पत्नी का देहान्त हो गया। बच्चों को संभालने और सामाजिक एवं राजनीतिक दायित्वों को सम्पन्न करने के लिए, न चाहते हुए भी इन्हें पुनर्विवाह करना पड़ा। उत्तरप्रदेश के अन्तर्गत, जिला बिजनौर के नवादा गाँव के जमींदार फतेहसिंह की बाल विधवा पुत्री चन्द्रावती के साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ। श्रीमती चन्द्रावती की अपनी कोई सन्तान नहीं थी। विमाता होते हुए भी उन्होंने माता के समान सभी बच्चों का पालन-पोषण किया और पूरी श्रद्धा के साथ इन्द्र जी की सेवा की। दुर्बल इन्द्र सबल बने रहे।

७१ वर्ष की आयु में, २३ अगस्त १९६० को दिल्ली में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति का निधन हो गया। उसके पश्चात् सभी पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन श्रीमती चन्द्रावती ने ही किया।

पत्रकारिता एवं साहित्य लेखन- पिता श्री महात्मा मुंशीराम ने अपने जीवन काल में हिन्दी, इंगलिश, उर्दू भाषा के कई पत्रों का सम्पादन प्रकाशन किया था। पिता से प्रेरित होकर इन्द्र जी की भी पत्रकारिता की अभिरुचि बनी। विद्यार्थी-काल में वे 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र के सम्पादन में पिता को सहयोग देते थे। तत्पश्चात् देहली में रहकर 'विजय' साप्ताहिक का सम्पादन किया। 'सत्यवादी', 'जनसत्ता' में भी सम्पादक रहे। २४ अप्रैल १९२३ को 'अर्जुन' समाचार-पत्र का शुभारम्भ किया। राष्ट्रवादी विचारधारा का पत्र होने के कारण अंग्रेज सरकार की उस पर कोप-दृष्टि रहती थी। १९२७ में एक आलोचनात्मक मुख्य लेख छपने पर इन्द्र जी को साढ़े पाँच वर्ष का कारावास और १५०० रुपये आर्थिक दण्ड दिया गया। बाद में अपील करने पर उसे छह मास का कर दिया गया।

इन्द्र जी ने अनेक विधाओं में साहित्य-लेखन किया। 'आर्यसमाज का इतिहास' (तीन भाग) इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है। इनके द्वारा पाँच ऐतिहासिक, सात उपन्यास, एक नाटक, दस जीवन चरित, ग्यारह अनुशीलनात्मक पुस्तकों का लेखन किया गया था। 'भारतैतिह्यम्' नामक बृहत् संस्कृत काव्य का प्रणयन भी इन्होंने किया। इन विविध रचनाओं से उनके व्यापक ज्ञान का अनुमान किया जा सकता है।

सामाजिक दायित्व- इन्द्र जी केवल विद्वान् लेखक, प्रभावशाली पत्रकार, प्रखर वक्ता ही नहीं थे, अपितु वे सामाजिक दायित्वों में भी सक्रिय थे। तत्कालीन प्रमुख व्यक्तियों और राजनेताओं से उनके प्रगाढ़ सम्बन्ध थे, राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गाँधी, पं. मोतीलाल नेहरू आदि उनका बहुत सम्मान करते थे। सन् १९५२ में आप राज्यसभा के सांसद् मनोनीत हुए।

समाज सेवा में योगदान करते हुए आप 'देहली स्वदेशी संघ' के अध्यक्ष, 'अस्पृश्यता निवारक लीग' के जनरल सेक्रेटरी, 'दलितोद्धार सभा' के सेक्रेटरी और 'श्रद्धानन्द पब्लिकेशन ट्रस्ट' के डायरेक्टर आदि पदों का दायित्व भी संभालते रहे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी चुने गये थे।

आप देहली कांग्रेस के भी अध्यक्ष रहे। सन् १९३० में देहली में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसमें आपको स्वागताध्यक्ष का दायित्व भी सौंपा गया। यह समझिए कि सम्मेलन के आयोजन का दायित्व आपका था। उस समय अंग्रेज सरकार ने कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया था। इन्द्र जी को अधिवेशन के आयोजन के कारण गिरफ्तार कर लिया। उन्हें छह महीने का कारावास और दो सौ रुपये का आर्थिक दण्ड देकर लाहौर जेल भेज दिया। दुर्बलशरीरी होते हुए भी उन्होंने कभी राष्ट्रीय भागीदारी से मुँह नहीं मोड़ा। जेल के कष्टों से घबराये नहीं।

आर्यसमाज और गुरुकुल के दायित्व- राष्ट्रीय

भागीदारी के साथ-साथ इन्द्र जी आर्यसमाज और गुरुकुल सम्बन्धी दायित्वों में भी योगदान करते रहे। सन् १९१७ में वे गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ (फरीदाबाद, हरियाणा) के 'मुख्य अधिष्ठाता' नियुक्त हुए। सन् १९२० में गुरुकुल काँगड़ी के 'सहायक मुख्य अधिष्ठाता' पद का कार्यभार संभाला। सन् १९३४ से १९६० तक वे गुरुकुल काँगड़ी के 'मुख्य अधिष्ठाता' एवं 'कुलपति' पद पर प्रतिष्ठित रहे। सन् १९४३ से १९४८ तक वे आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान और 'सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा' के मन्त्री चयनित हुए। इन्द्र जी के नेतृत्व में गुरुकुल कांगड़ी निरन्तर अग्रसर होता रहा और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। शायद ही कोई राजनेता और महापुरुष ऐसा रहा होगा, गुरुकुल काँगड़ी में जिसका आगमन न हुआ हो। महात्मा गाँधी अपने जीवन में तीन बार गुरुकुल में पधारे थे। गुरुकुल का आकर्षण ही ऐसा था।

इन्द्र जी ४ जून १९६० को गुरुकुल के कुलपति पद से सेवानिवृत्त हुए। २४ जुलाई को उनको भावभीनी विदाई दी गई। अपने विदाई भाषण में उन्होंने यह मार्मिक कथन किया था कि 'गुरुकुल तो मेरी आत्मा है, इससे विदाई नहीं हो सकती।' वहाँ 'श्रद्धा निकुंज' नामक आवास का निर्माण कर इस कथन को उन्होंने चरितार्थ भी किया।

श्रद्धा निकुंज- सेवानिवृत्त होने के बाद भी गुरुकुल में निवास की अनुभूति बनी रहे, इस भावना से इन्द्र जी ने गुरुकुल से संलग्न १८ बीघा भूखण्ड खरीदा और उसमें बगीचा तथा एक कुटिया का निर्माण अपने निवास के लिए कराया और उसका नाम 'श्रद्धा निकुंज' रखा। किन्तु २३ अगस्त १९६० को वे इस संसार से विदा हो गये।

बाद में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती चन्द्रावती दिल्ली से आकर समय-समय पर उसमें निवास करती थीं। परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान स्मृतिशेष डॉ. धर्मवीर जी जब गुरुकुल काँगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, तब इन्द्र जी की धर्मपत्नी ने उनको एक ईमानदार और जिम्मेदार व्यक्ति मानकर उसकी देखभाल और संभाल का पूर्ण दायित्व उन्हें सौंप दिया था। वे सात-आठ वर्ष तक उसमें निवास करते रहे और उसकी रक्षा का दायित्व निभाते रहे। इन पंक्तियों के लेखक और डॉ. रामवीर जी (फरीदाबाद) को भी डॉ. धर्मवीर जी के साथ कई वर्ष तक 'श्रद्धा निकुंज' में रहने का अवसर प्राप्त हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र और मनीषी विद्वान् इन्द्र जी के आवास में वर्षों तक रहने का अवसर प्राप्त होना हमारे लिये सौभाग्य से कम नहीं था। प्रेरणा और पुण्यार्जन का अलौकिक लाभ हमें सहज ही प्राप्त होता रहा।

कुलपति डॉ. सुरेन्द्र कुमार को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार ने दी भव्य समारोह में भावभीनी विदाई

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के कुलपति, परोपकारिणी सभा अजमेर के कार्यकारी प्रधान, आर्यजगत् के ख्याति प्राप्त विद्वान्, वक्ता और मनुस्मृति के शोधकर्त्ता एवं भाष्यकार डॉ. सुरेन्द्र कुमार को कुलपति पद की सेवाओं के लिये प्रोत्साहित किया गया।

१३ जुलाई २०१८ को विश्वविद्यालय प्रशासन की ओर से उनके सम्मान में भव्य विदाई समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें सैकड़ों शिक्षक, कर्मचारी, विद्यार्थी एवं सेवानिवृत्त जन उपस्थित थे। सभी विभागों और यूनियन की ओर से उनका स्वागत करने के लिए माल्यार्पण किया गया। कार्यवाहक कुलपति प्रो. डी.के. माहेश्वरी और कुलसचिव प्रो. दिनेश भट्ट ने स्मृति चिह्न एवं शॉल ओढ़ाकर सम्मान किया।

विश्वविद्यालय के सभी लोगों ने मिलकर भावभीनी विदाई दी। विश्वविद्यालय की ओर से तथा व्यक्तिगत रूप से शिक्षकों और कर्मचारियों के प्रतिनिधि के रूप में प्रो. देवेन्द्र मलिक, डॉ. अजय मलिक, श्री संचित डागर, श्री राजीव त्यागी उन्हें उनके निवास स्थान गुरुग्राम तक विदा करने के लिए साथ आये। इस सफल कार्यकाल के लिए डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी को हार्दिक बधाई और प्रभु से कामना कि उनका शेष जीवन आर्य जगत् की सेवा में व्यतीत हो।

संस्था समाचार

पुण्यतिथि पर यज्ञ– ऋषि उद्यान की भव्य यज्ञशाला में १७ जुलाई को श्री नारायण सिंह राजगुरु की स्मृति में उनके सुपुत्र ने यज्ञ किया। २० जुलाई को परोपकारिणी सभा के पूर्व मन्त्री एवं सांसद श्री श्रीकरण शारदा की पुण्यतिथि पर उनके सुपुत्र श्री हेमन्त शारदा अपनी पत्नी के साथ तथा श्री मनोज शारदा अपनी पत्नी के साथ अतिथि यज्ञ के होता बने। उसी समय दोनों यजमानों ने अपनी बुआ सुश्री सरला शारदा की पुण्य स्मृति में भी आहुति प्रदान की।

अतिथि– अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, वैदिक यन्त्रालय, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल–भिनाय कोठी, अन्त्येष्टि स्थल–मलूसर, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखने, संन्यासियों–विद्वानों से मिलकर शंका–समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, व्याकरण–दर्शन–वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए आर्यजन देश–विदेश से निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में होशंगाबाद, अलवर, रेवली, नसीराबाद, कोटा, नाडियाड, दिल्ली, जयपुर, फतेहपुर, भरतपुर, हरिद्वार, प्रतापनगर, रोजड़, धौलपुर, कोठपुतली, चापानेरी, छिन्दवाड़ा, उदयपुर, पुष्कर, भोपाल, जीन्द, अहमदाबाद, आबूरोड आदि स्थानों से ५४ अतिथि ऋषि उद्यान पधारे।

विशिष्ट अतिथि– २६ जुलाई रविवार प्रातःकालीन सत्संग में जगन्नाथपुरी, उड़ीसा से पधारे लोकभाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष डॉ. सदानन्द दीक्षित जी यज्ञ में मुख्य यजमान बने तथा यज्ञ के पश्चात् व्याख्यान दिया। आपने व्याख्यान से पूर्व प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का स्मरण किया एवं संस्कृत भाषा के महत्त्व और प्रचार पर अपना अनुभव सुनाया। दो दिन के प्रवास पर आये हुये डॉ. सदानन्द दीक्षित ने कहा कि देश में दुर्दशा तब तक बढ़ेगी जब तक भारत के संविधान से 'द इण्डिया देट् इज् भारत' ध्येय वाक्य को हटाया नहीं जायेगा। अब हम राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाओं में भारत के नाम से मातृभूमि को जानते हैं और अंग्रेजी में इण्डिया लिखते हैं। दोनों नामकरण से हमारी राष्ट्रीयता समाप्त होती है और लोग अपनी मातृभूमि से दूर हो जाते हैं, देश का नाम केवल भारत ही रखने के लिए डॉ. दीक्षित ने आग्रह किया। कार्यक्रम का संचालन विभागीय संस्कृताधिकारी डॉ. निरंजन साहू ने किया।

दैनिक प्रवचन–प्रातःकालीन सत्संग में आचार्य सोमदेव, आचार्य कर्मवीर आर्य, आचार्य विद्यादेव के व्याख्यान हुए। सायंकाल सत्संग में श्री संदीप ने योग विषय में व्याख्यान दिया, आचार्य सत्येन्द्र आर्य ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का पाठ करवाया तथा व्याख्यान दिया। शनिवार सायंकालीन सत्संग में आचार्य वेदपाल आर्य ने व्याख्यान दिया। रविवार सायंकालीन प्रवचन में ब्र. शिवनाथ एवं ब्र. चन्द्रदेव ने व्याख्यान किया।

आर्यवीर दल की बैठक सम्पन्न– २६ जुलाई रविवार दोपहर को महर्षि दयानन्द सरस्वती भवन में आर्यवीर दल के प्रान्तीय अधिकारियों और अजमेर जिला के अधिकारियों की बैठक हुई। जिसमें दिल्ली में आयोजित अन्तरराष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन २०१८ में भाग लेने तथा शीतकालीन शिविर आयोजन के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा हुई।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेले में आप सभी आमन्त्रित हैं।

१६, १७, १८ नवम्बर २०१८, **सम्पर्क**– ०१४५–२४६०१६४

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

ईश्वर (वैज्ञानिकों की दृष्टि में), प्रस्तुतकर्ता एवं अनुवादक - पं. क्षितीश कुमार वेदालङ्कार

मूल्य -१५० रु., **पृष्ठ** - २६४

दुनिया में दो तरह के मनुष्य पाये जाते हैं, एक वो जो भगवान् को अर्थात् उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और दूसरे वे जो भगवान् जैसी किसी सत्ता पर भरोसा नहीं करते। पहले को आस्तिक और दूसरे को नास्तिक कहा जाता है। नास्तिकों के अपने तर्क हैं और इन तर्कों में वे प्राय: वैज्ञानिक प्रयोगों, आविष्कारों, विज्ञान की प्रगति की दलीलों का ही हवाला देते हैं। विज्ञान है तो बहुत अच्छी चीज़, पर अगर कहीं किसी वैज्ञानिक की चूक से कुछ गलत निष्कर्ष आ जाये तो उसे आंखें बन्द करके मान लिया जाता है। आखिर वैज्ञानिक भी तो मनुष्य ही है, गलती तो वह भी करता ही है। इस तरह एक नये प्रकार का अन्धविश्वास 'वैज्ञानिक अन्धविश्वास' जन्म लेता है और दो अन्धविश्वास आपस में टकरा जाते हैं। जो भगवान् को नहीं मानता, वह भी सोचना नहीं चाहता, केवल दूसरों के भरोसे चलता है और जो मानता है, उसने भी अपना दिमाग बाबाओं के पल्ले बाँध रखा है। इन दोनों से अलग कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपने मस्तिष्क को थोड़ा मेहनत करने देते हैं और सत्य तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही कुछ वैज्ञानिकों के विचारों को इस पुस्तक में संकलित किया गया है। जरूरी नहीं कि ये सभी वैज्ञानिक भगवान् को स्वीकार करते ही हों, पर वह इतना तो स्वीकार करते ही हैं कि कुछ तो है जो विज्ञान की पकड़ से बाहर है। उनकी इसी 'ना' में शायद 'हाँ' छिपी है, बस अन्तर इतना ही है कि उनकी वह खोज बिना नाम वाली है और वेद ने उसको नाम दे दिया है- 'ईश्वर'।

त्रैतवाद- लेखक-विद्यामार्तण्ड पंडित बुद्धदेव विद्यालङ्कार

मूल्य-२० रु., **पृष्ठ** -४०

परिचय- पं. बुद्धदेव जी एक बार अपने आर्य मित्र के पास मिलने गये। उन्होंने देखा कि मित्र का बड़ा बेटा कम्युनिस्ट विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है। कारण यह कि वह देश-विदेश में घूमकर आया है और किताबें भी कम्युनिज़्म की ही पढ़ता है। पंडित जी ने वह पुस्तक मांगी, जिससे कम्युनिज़म का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। उस पुस्तक का नाम था The Origin of life on the Earth, जिसका विषय था, 'पृथ्वी पर पहली बार जीवन कैसे आया?' बुद्धदेव जी ने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर इसकी समीक्षा की और उस समीक्षा की एक पुस्तक बन गई- त्रैतवाद।

आख्यातिक- लेखक- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- २५० रु. , **पृष्ठ** - ६०८

परिचय- महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन पर बहुत बल देते थे। विशेषकर व्याकरण पर, जो कि सब शास्त्रों की कुंजी है। संस्कृत व्याकरण को सरल एवं सुगम बनाने के लिये उन्होंने पाणिनीय व्याकरण के सहायक ग्रन्थों के रूप में 'वेदांग प्रकाश' नाम से १४ पुस्तकें लिखीं। उनमें से आठवाँ भाग यह 'आख्यातिक' है। इसमें मूलत: धातु पाठ की व्याख्या है। साथ ही उन धातुओं के रूप निर्माण की प्रक्रिया को भी समझाया गया है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

ओ३म्

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर (राज.) पिन. ३०५००१ दूरभाष– ०१४५–२४६०१६४

वेदगोष्ठी–२०१८

मान्यवर सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली तथा अनुसंधान विभाग परोपकारिणी सभा, अजमेर के संयुक्त तत्त्वावधान में ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध–पत्र परोपकारी व वेदपीठ की शोध–पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते वे भी लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। गत ३० वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। अब तक निम्नलिखित बिन्दुओं पर विचार किया जा चुका है:–

१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली।	**१२ नवम्बर, १९८८**
२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	**०५ नवम्बर, १९८९**
३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	**२७ नवम्बर, १९९०**
४. वेद और विदेशी विद्वान्।	**१६ नवम्बर, १९९१**
५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	**०१ नवम्बर, १९९२**
६. वेदों के दार्शनिक विचार।	**२८ नवम्बर, १९९३**
७. सोम का वैदिक स्वरूप।	**१२ नवम्बर, १९९४**
८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	**०३ नवम्बर, १९९५**
९. वैदिक समाज व्यवस्था।	**०१ नवम्बर, १९९६**
१०. वेद और राष्ट्र।	**२४ अक्टूबर, १९९७**
११. वेद और विज्ञान।	**०९ अक्टूबर, १९९८**
१२. वेद और ज्योतिष।	**१० नवम्बर, १९९९**
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	**०३ नवम्बर, २०००**
१४. वेद और निरुक्त	**१८ नवम्बर २००१**
१५. वेद में इतिहास नहीं	**०१ नवम्बर २००२**
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	**३१ अक्टूबर २००३**
१७. वेद में शिल्प	**१९ नवम्बर २००४**
१८. वेदों में अध्यात्म	**११ नवम्बर, २००५**
१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	**२७ नवम्बर, २००६**
२०. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है	**१६ नवम्बर, २००७**
२१. वैदिक समाज विज्ञान	**०५ नवम्बर, २००८**
२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	**२३ अक्टूबर, २००९**
२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	**१२ नवम्बर, २०१०**
२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	**०४ नवम्बर, २०११**
२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्यः वैदिक परिप्रेक्ष्य	**१६ नवम्बर, २०१२**
२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	**८ नवम्बर, २०१३**
२७. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**३१ अक्टू. १,२ नव., २०१४**
२८. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	**२०,२१,२२ नव., २०१५**
२९. दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	**४,५,६ नव., २०१६**
३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	**२७,२८,२९ अक्टू., २०१७**

।। ओ३म् ।।

वेद गोष्ठी २०१८ के लिए निर्धारित विषय

षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द

उपशीर्षक :

०१. वेदों में दर्शन तत्त्व की विवेचना
०२. वेदों में षड्दर्शनों के मूलतत्त्व की मीमांसा
०३. महर्षि दयानन्द के चिन्तन में षड्दर्शनों की वेदमूलकता
०४. षड्दर्शनों में ईश्वर-विचार और उनकी वेदमूलकता
०५. षड्दर्शनों में प्रमाण-विचार और महर्षि दयानन्द
०६. षड्दर्शनों में जगत् का सम्प्रत्यय और उसकी वेदमूलकता
०७. षड्दर्शनों में जीव सिद्धान्त या जीवात्मा का सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
०८. षड्दर्शनों की वेदमूलकता और मुक्ति विचार के सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द
०९. षड्दर्शनों की वेदमूलकता प्रत्यक्ष प्रमाण के सन्दर्भ में- एक विवेचना
१०. षड्दर्शनों में अनुमान प्रमाण की वेदमूलकता का समीक्षात्मक विशेषण
११. षड्दर्शनों में बन्धन का सिद्धान्त और वेदमूलकता
१२. वेदों के सन्दर्भ में षड्दर्शनों की प्रमुख मान्यताएँ और महर्षि दयानन्द
१३. षड्दर्शनों में मोक्ष प्राप्ति के साधन और महर्षि दयानन्द
१४. षड्दर्शनों में सत् के स्वरूप की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१५. षड्दर्शनों में कर्म सिद्धान्त और महर्षि दयानन्द
१६. षड्दर्शनों में पदार्थ विवेचन और महर्षि दयानन्द
१७. षड्दर्शनों में ब्रह्म एवं जीव सम्बन्धों की विवेचना की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१८. षड्दर्शनों के समन्वय की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
१९. षड्दर्शनों में वेद विचार और महर्षि दयानन्द
२०. षड्दर्शनों में त्रैतवाद की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द
२१. महर्षि दयानन्द के अनुसार षड्दर्शनों का समन्वय
२२. वैशेषिक दर्शन की वेदमूलकता
२३. न्याय दर्शन की वेदमूलकता
२४. सांख्य दर्शन की वेदमूलकता
२५. योग दर्शन की वेदमूलकता
२६. मीमांसा दर्शन की वेदमूलकता
२७. वेदान्त दर्शन की वेदमूलकता
२८. वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म के स्वरूप की वेदमन्त्रों से पुष्टि।

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ

०१. षड्दर्शन समन्वय- श्री प्रशान्त आचार्य
०२. आचार्य उदयवीर शास्त्री का षड्दर्शन भाष्य एवं विवेचना ग्रन्थ
०३. योग दर्शन भाष्य-पं. राजवीर शास्त्री
०४. स्वामी ब्रह्ममुनि के दर्शन भाष्य
०५. स्वामी दर्शनानन्द जी के दर्शन भाष्य
०६. भारतीय दर्शन (दो भाग)- डॉ. राधाकृष्णन्
०७. महर्षि दयानन्द सरस्वती के समस्त ग्रन्थ
०८. दर्शन तत्त्व विवेक- आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री
०९. षड्दर्शन समन्वय-पं. विद्यानन्द शर्मा
१०. भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण- एम. हिरियन्ना
११. भारतीय दर्शन-एस.एन. दासगुप्त
१२. भारतीय दर्शन-दन्त एवं चटर्जी
१३. भारतीय दर्शन- एन.के. देवराज
१४. भारतीय दर्शन-जी.डी. शर्मा
१५. भारतीय दर्शन-उमेश मिश्र
१६. भारतीय दर्शन-बलदेव उपाध्याय
१७. सिक्स सिस्टम ऑफ इण्डियन फिलॉस्फी- एफ. मैक्समूलर
१८. रिचर्ड गार्वे- सांख्य फिलॉस्फी

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

ऐतिहासिक कलम से....

मृत्यु और जन्म के बीच की गति

श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती

२७ अगस्त जगदेवसिंह सिद्धान्ती जी की पुण्यतिथि है। उनके जीवन पर एक संक्षिप्त लेख पाठक इसी अंक में पृष्ठ ३९ पर पढ़ेंगे ही, साथ ही उनकी विद्वत्ता के भी दर्शन हों और 'मृत्यु के बाद जीवात्मा की स्थिति' जैसे जटिल विषय पर शास्त्रीय दृष्टिकोण भी पाठकों को मिले, इसी उद्देश्य से यह लेख 'ऐतिहासिक कलम से' स्तम्भ में पाठकों को सादर समर्पित। -सम्पादक

जन्म से लेकर मरण तक की दशा को तो सर्वसाधारण मनुष्य भी देखते और जानते हैं, परन्तु मृत्यु के आरम्भ से लेकर उस जीव के अगले जन्म के बीच की क्या दशा होती है, उसको हम सामान्य जन नहीं जान सकते, क्योंकि इसका ज्ञान साधारण रूप से जीव को और साधारण ज्ञान के बिना अनुमान प्रमाण भी काम नहीं दे सकता। यह बड़ी गम्भीर समस्या है, परन्तु सर्वज्ञ परमात्मा जीवों के कल्याण के लिये इस बात को मनुष्यों को समझाने के लिए वेद का उपदेश देता है। वेद ही परम प्रमाण है, क्योंकि यह ईश्वर का वचन है। हमारे पूर्वज, ऋषि, महर्षि, आप्त विद्वानों ने वेद का अभ्यास करके इस समस्या का अपने ग्रन्थों में समाधान किया है। वेद के आधार पर बने ऋषि प्रणीत ग्रन्थों, (आरण्यक, उपनिषदों, आयुर्वेद तथा दर्शन=शास्त्रों) में इस दशा पर बहुत उत्तम और खुलकर लिखा गया है। इन्हीं आप्त ग्रन्थों के स्वाध्याय से विद्वान् लोग भी इसका मनन करके साधारण लोगों को समझाते आये हैं। मनुष्य जन्म केवल रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं तक सीमित नहीं है- यद्यपि ये पदार्थ अनिवार्य रूप से प्राथमिक आवश्यकता के रूप में ग्रहण करने ही चाहियें। इनकी अनिवार्यता का निषेध कोई भी समझदार सज्जन नहीं कर सकता, परन्तु मनुष्य का जीवन यहीं तक सीमित नहीं है। मनुष्य का ध्येय उपर्युक्त पदार्थों से बहुत आगे तक है। भगवान् ने प्रत्येक जीव को उसके काम करने के साधन दिये हुये हैं। मनुष्य का सामर्थ्य तो और भी अधिक है। उसके हृदय में अनेक प्रकार के तत्त्वों को जानने की इच्छा रहती है और वह जानने के लिए सदा यत्न करता रहता है। वह अपने द्वारा की गई भूलों के परिणामस्वरूप दु:ख भोगता है और यह चाहता है कि इस दु:ख से छुटकारा पा सकूं। प्रतिदिन हमें भूख-प्यास लगती है, उसके निवारण के लिये हम यत्न करते ही रहते हैं, परन्तु यह भूख-प्यास थोड़े समय के पश्चात् हमें फिर सताती है। तब मनुष्य विचार करता है कि कोई उपाय ऐसा किया जावे कि जिससे इस दु:ख से बहुत समय तक दूर रह सकूं। जब साधारण भूख-प्यास को मिटाने के लिये हमें परिश्रम करना आवश्यक होता है, तब दु:ख को बहुत अवधि तक दूर करने के लिये तो अत्यन्त पुरुषार्थ करना ही होगा। ऐसी दशा में मनुष्य विचार करता है कि यह शरीर, बाह्य इन्द्रियाँ और अन्त:करण तो साधन मात्र हैं, जैसे भूख- प्यास को दूर करने के लिये अन्न और जल। विचार के पश्चात् उसे निश्चय होता है कि इन शरीर आदि साधनों का अधिष्ठाता कोई भिन्न तत्त्व है। आगे बढ़ने पर वह जान लेता है कि वह अधिष्ठाता=स्वामी=मालिक एक स्वतन्त्र चेतन सत्ता है। इस चेतन सत्ता के अनेक भेद हैं, जिनमें गुणों के आधार पर मनुष्य प्राणी सबसे उत्तम तत्त्व है। इस पर जब मनुष्य विचार करने लगता है, तो उसके सामने अनेक उलझनें खड़ी होती रहती हैं। मनुष्य परस्पर पूछते हैं कि इस शरीर का स्वामी कौन है? उत्तर रूप में अनेक प्रकार की बातें मनुष्य सुनता है। कोई कहता है कि यह शरीर आदि सामग्री ही स्वयं एक तत्त्व है, इससे पृथक् कोई चेतन सत्ता नहीं है। दूसरे कहते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता कि साधन ही स्वामी हो सके। यह तो उस चेतन सत्ता के औजार मात्र हैं। वह सत्ता शरीर आदि से भिन्न चेतन तत्त्व के रूप में है। फिर विचारक मनुष्य के सामने यह प्रश्न उठता है कि क्या शरीर आदि साधनों के नष्ट हो जाने पर इन साधनों का स्वामी चेतन तत्त्व भी नष्ट हो जाता है अथवा इनसे वह पृथक् बना रहता है? वह प्रतिदिन देखता है कि उसके कार्य करने के साधन टूटते-फूटते रहते हैं, परन्तु वह स्वामी फिर इनका निर्माण करके आगे काम करता रहता है। तब स्वभाव रूप से उसके हृदय में एक जिज्ञासा का जन्म होता है कि तो यह चेतन तत्त्व है क्या? और यह मरणधर्मा है अथवा सदा बना रहता है? इस जिज्ञासा से वह मनुष्य व्याकुल हो उठता है और अपने से अधिक ज्ञानियों के पास पहुँचकर इस समस्या को समझने का भरसक यत्न करता है। परन्तु यह प्रश्न इन्द्रिय ग्राह्य न होने से अतीव जटिल है। इसका समाधान भी सामान्य जन नहीं कर सकते, अपितु आप्त विद्वान् ही कर सकते हैं।

यह प्रश्न और इसका समाधान सदा से इसी रूप में चला आ रहा है। इन आगे के पृष्ठों में हम इसी समस्या का समाधान करने के लिये ऋषियों, महर्षियों के ग्रन्थों का आधार लेते हैं।

मूल रूप में दो गतियाँ- कठोपनिषद् में यम और नचिकेता का संवाद रूप एक उपाख्यान दिया गया है। नचिकेता जिज्ञासु

है और यम उसकी जिज्ञासा का समाधान करता है, इसी में उपनिषद् की सम्पूर्ति हो जाती है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि नचिकेता को जीव और यम को परमेश्वर भी समझा जा सकता है-यह अलंकाररूप संवाद है। नचिकेता पूछता है-

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः।।

कठोपनिषद् १.१.२०

अर्थात् हे यम! (मनुष्ये प्रेते) मनुष्य के मर जाने पर (या-इयं-विचिकित्सा) जो यह संशय है कि (एक-अस्ति) कुछ लोग कहते हैं कि जीव शरीर छोड़ने पर भी नित्य रूप में रहता है और कुछ दूसरे कहते हैं कि (अयम्-न-अस्ति) कि यह जीव नहीं रहता, वह भी शरीर की भाँति नष्ट हो जाता है। इस सन्देह को दूर करने के लिये (त्वया-अनुशिष्टः-अहम्) तुझ आप्त विद्वान् यम के द्वारा अनुशिष्टः= शिक्षित हुआ मैं (एतद्) इस संशय रहित तत्त्व को (विद्याम्) जान लूँ-यही मेरी श्रेष्ठ अन्तिम जिज्ञासा है।

इस जिज्ञासा की महत्ता को रखते हुए यम ने नचिकेता के सामने इस जिज्ञासा को छोड़ देने के लिये कहा कि बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी यह गम्भीर प्रश्न बना रहता है। तू अपने लौकिक कल्याण की कामना कर। परन्तु नचिकेता शम दम आदि साधन सम्पन्न सच्चा जिज्ञासु था। उसने पुनः निवेदन किया कि इस प्रश्न की गम्भीरता चाहे कुछ भी हो, मैं तो इसी जिज्ञासा की पूर्त्ति करना चाहता हूँ। आपके समान इस संशय को दूर करने वाला मुझे कौन गुरु मिल सकता है? जब यम के अनेक प्रलोभन देने पर भी नचिकेता अपनी जिज्ञासा पर अडिग रहा, तब यम ने कहा-

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम।।
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वायदेहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम्।।

कठोपनिषद् ५.६-७।।

(हन्त) हे नचिकेता! मुझे बड़ा आश्चर्य है और प्रसन्नता है कि तू वास्तव में यम नियमादि साधन सम्पन्न जिज्ञासु है, अतः (ते) तेरे लिये (इदम्) यह (प्रवक्ष्यामि) उपदेश करूंगा कि **(१)** एक जो (गुह्यम्-सनातन-ब्रह्म) अत्यन्त गोपनीय, वेदाभ्यास और योगाभ्यास ही से जानने योग्य (सनातनम्) सदा से नित्य रूप में सबका स्वामी और (ब्रह्म) महान् परमेश्वर है, उसका प्रवचन करूंगा (च) और हे (गौतम) वाणी के रहस्य को समझने वालों में श्रेष्ठ नचिकेता! तुझे **(२)** यह भी शिक्षा करूंगा कि (मरणम्) मृत्यु को (प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) जीव की जो दशा होती है।। ६।।

सब जीवात्मा (यथाकर्म यथाश्रुतम्) अपने-अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार परमेश्वर की व्यवस्था के आधीन होकर (अन्ये देहिनः) कुछ शरीरधारी जीव (योनिम्) भिन्न-भिन्न योनियों= शरीरों को (प्रपद्यन्ते) प्राप्त करते हैं। तथा दूसरे शरीरधारी जीव अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार ही ब्रह्म की व्यवस्था के आधीन होकर (स्थाणुम्) निश्चित एक अद्वितीय परमेश्वर को (अनुसंयन्ति) प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करके मोक्षकाल की अवधि पर्यन्त ब्रह्म के आनन्द का उपभोग करते हुए सर्वत्र स्वच्छन्द भ्रमण करते हैं। उनको मानव शरीर उस मुक्ति की अवधि तक पुनः धारण नहीं करना पड़ता।

(विशेष-'स्थाणु' शब्द का अर्थ प्रायः सभी विद्वान् 'वृक्षादि स्थावर योनि' करते हैं अर्थात् दूसरे जीव इन नीच योनियों को प्राप्त होते हैं, परन्तु हमारे मत में ऐसा अर्थ ठीक नहीं है, क्योंकि यदि वे विद्वान् वृक्षादि स्थावर शरीर को योनि मानते हैं, तो इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में यह बात कही जा चुकी कि योनि को प्राप्त हो जाते हैं फिर इस श्लोक के उत्तरार्द्ध में 'योनि' शब्द का कुछ भी वर्णन नहीं, अपितु 'स्थाणु' शब्द दिया गया है, परन्तु स्थाणु का अर्थ इस श्लोक में वृक्ष का ठूंठ नहीं है, अपितु ईश्वर है। ईश्वर ही एक अणु=अत्यन्त सूक्ष्म चेतन तत्त्व ऐसा है जो कि गतिरहित है अतः वह गतिरहित होने से स्थाणु कहा गया है। इसके साथ यह बात भी है कि जो मनुष्य मुक्ति के साधन करके परमानन्द को प्राप्त करते हैं, उनका इस श्लोक में वर्णन नहीं मिलता और आगे भी उपनिषद् की समाप्तिपर्यन्त इसका उपदेश नहीं दिया गया। अतः इस श्लोक के उत्तरार्ध में उन मनुष्यों का वर्णन किया गया है जो कि अपने-अपने ज्ञान और कर्म के अनुसार परमेश्वर रूपी मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ''गीता तक में भी 'स्थाणु' शब्द का प्रयोग चेतन सत्ता के रूप में हुआ है।'')

इस उपर्युक्त कठोपनिषद् के विवरण से स्पष्ट हो गया कि मृत्यु के पश्चात् जीव की दो गतियाँ होती हैं= (१) एक परमेश्वर की व्यवस्था से जीव अपने कर्मफल भोगने के लिये भिन्न-भिन्न योनियों को धारण करते हैं। (२) दूसरे वे पवित्रात्मा शुद्ध ज्ञान, कर्म और उपासना के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

मृत्यु के समय का वर्णन -महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में बड़े विस्तार से मृत्युकाल की अवस्था का वर्णन किया है। हम उसी आधार पर कुछ विवेचन करते हैं- **तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति संपरिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्।।** वेदान्त ३.१.१

अर्थात् शास्त्रों में प्रश्न और उत्तर रूप में यह कहा गया है कि जीव मृत्यु होने पर जब अगले शरीर को धारण करने के लिये वर्त्तमान शरीर को छोड़ता है, तब वह अकेला नहीं जाता, अपितु उसके साथ सूक्ष्म शरीर भी जाता है। सूक्ष्म शरीर में ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, पाँच सूक्ष्मभूत, मन और बुद्धि माने जाते हैं। अन्य सूक्ष्म तत्त्वों का भी इन्हीं में समावेश कर लिया जाता है। स्थूल शरीर तो यहीं रह जाता है, जिसका दाह किया जाता है। अब इन तत्त्वों में किस क्रम से, कौन पहिले इस शरीर को छोड़ने लगता है-

वाङ् मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च।। वेदान्त दर्शन ४.२.१।।

यह देखा भी जाता है और शास्त्रों में प्रतिपादित किया गया है कि मरने वाले जीव की वाणी सबसे पहिले मन में चली आती है। अब वह बोल नहीं सकता, परन्तु देखना, सुनना, चखना, सूंघना और विचार करना बना रहता है। अब अगली प्रक्रिया देखिये- **अत एव च सर्वाण्यनु।।** वेदान्त ४.२.२

जब वाणी का कार्य ठप्प हो गया, तब उसके पीछे-पीछे दूसरी ज्ञानेन्द्रियाँ चक्षु, श्रोत्र, घ्राण और त्वक् भी अपनी सत्ता को शरीर से हटाकर वाणी के अनुसार ही ये भी मन में चली जाती हैं। यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि इन ज्ञानेन्द्रियों का नाश हो गया। नहीं, इन पाँचों की सत्ता बनी रहती है, परन्तु इनका व्यवहार बन्द होकर मन में जाकर सिमट गया। अब आगे का दृश्य देखिये- **तन्मनः प्राण उत्तरात्।।** वेदान्त ४.२.३

उन इन्द्रियों के सहित मन प्राणों में चला जाता है। ऐसी दशा में बाहर का सब कार्य बन्द हो गया। केवल प्राण की क्रिया स्थूल शरीर में देखी जा रही है। अब अगली सीढ़ी को निहारिये- **सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः।।** वेदान्त ४.२.४

वह प्राण अब मन और इन्द्रियों को साथ लेकर शरीरादि इन सब साधनों के अध्यक्ष जीवात्मा में चला गया, यह मन्तव्य आत्मा के शास्त्रीय प्रवचन से सिद्ध होता है।

अब जीव की अगली गति देखिये-

भूतेषु तच्छ्रुतेः।। वेदान्त ४.२.५

वह जीवात्मा स्थूल शरीर के भीतर विद्यमान् सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत सूक्ष्म भूतों में प्रवेश करता है। ऐसा हो जाने पर इस स्थूल शरीर का अधिष्ठाता इस स्थूल शरीर से बाहर निकल जाता है तथा अपने साथ शरीर के १७ तत्त्वों को भी ले जाता है। यह सूक्ष्म शरीर जीव का आतिवाहिक भी कहा जाता है। अब जीव सुषुप्ति अवस्था में चला जाता है। स्वयं वह इच्छानुसार अगली गति को प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु जीव के कर्मों के अनुसार उसके फलों को भुगाने वाला परमेश्वर जीव के अन्यत्र गमन की व्यवस्था करता है। इससे आगे वे ही दो गतियाँ जीव को प्राप्त होती हैं जिनका वर्णन कठोपनिषद् के प्रमाणों द्वारा ऊपर लिख चुके हैं।

इस वेदान्त के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये हम आगे कुछ अन्य शास्त्रों के भी प्रमाण देते हैं, जिससे विषय का स्पष्टीकरण होता चला जावे।

तद्बीजात् संसृतिः।। (सांख्यदर्शन ३.३) एक देह से दूसरे में जाते समय शरीर के कारण सूक्ष्म भूत तत्त्व साथ जाते हैं।

सप्तदशैकं लिङ्गम्।। (सांख्य दर्शन ३.९) १७ तत्त्वों (यथा ऊपर वर्णित हैं) का सूक्ष्म शरीर होता है।

न स्थूलमिति नियम आतिवाहिकस्यापि विद्यमानत्वात्।। (सांख्य दर्शन ५.१.३) यह नियम नहीं है कि जीव के साथ केवल स्थूल शरीर ही होता है, अपितु दूसरा सूक्ष्म शरीर भी विद्यमान रहता है। इसको आतिवाहिक शरीर कहते हैं अर्थात् देहान्तर को ले जाने के लिये यह सूक्ष्म शरीर आतिवाहिक=सवारी का काम देता है।।

''यह १७ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर जन्म-मरण आदि में भी जीव के साथ रहता है।''- सत्यार्थप्रकाश ९ वाँ समुल्लास।।

आतिवाहिकशरीरयुक्तस्य तस्य।। चरके।।
स बीजधर्मीह्यपराणि देहान्तराण्यात्मनि यातियाति।।

चरके (आयुर्वेद)

अर्थात् जीव आतिवाहिक शरीर=सूक्ष्म शरीर से युक्त होता है। वह सूक्ष्म शरीर जीव के एक देह से दूसरे देह को जाते समय बीज तत्त्वों के रूप में साथ जाता है।।

तानि परे तथा ह्याह।। वेदान्त ४.२.१५

शास्त्र बतलाता है कि वे सूक्ष्म शरीर के सब तत्त्व जीव सहित ब्रह्म की व्यवस्था के आधीन हो जाते हैं। जब जीव सुषुप्ति दशा में होने से स्वतन्त्र रूप से गमन नहीं करता, अपितु परमात्मा की व्यवस्था से कर्मफल भोगार्थ अन्य देहों में उसका गमन होता है।

अविभागो वचनात्।। (वेदान्त ४.२.१६) जिस समय जीव सूक्ष्म शरीर के साथ देह को छोड़कर एक शरीर से गमन करता है, तब उसकी इन्द्रियाँ मन में और मन प्राण में लीन रहते हैं, परन्तु उनमें पृथक् भाव नहीं रहता। हाँ, उनका नाश नहीं होता। तत्त्व रूप में वे सूक्ष्म शरीर में बने रहते हैं।

रश्म्यनुसारी।। (वेदान्त ४.२.१८) अब आकाश में सूर्य की रश्मियों= किरणों द्वारा जीव गमन करता है।

तस्मै युज्यन्तामुस्त्रियाः।। (यजुर्वेद ३५.२) परमात्मा उस जीव को किरणों द्वारा तब तक गमन कराता है जब तक कि

अगला देह प्राप्त न होवे। इसलिये अगले ही मन्त्र में कहा है-

विमुच्यन्तामुस्त्रियाः।। यजुर्वेद ३५.३

यहाँ ऋषि दयानन्द इस मन्त्र के भावार्थ में लिखते हैं कि ''जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत, सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उनको छोड़ देती है।'' क्योंकि तब उस जीव के सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध पुनः स्थूल शरीर से हो जाता है।

जिस समय जीव शरीर से निकलकर आकाश, वायु, सूर्य, चन्द्र और विद्युत आदि तत्त्वों में गमन करता है तब इन तत्त्वों के द्वारा उसको कर्मफल भोग नहीं मिलता। क्योंकि ये सब उसको आगे पहुँचाने के साधन-मात्र हैं और जीव सुषुप्ति दशा में ही रहता है। जैसे- **आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्।।** वेदान्त ४.३.४

ये वायु आदि तत्त्व तो उस जीव को सवारी का काम देते हैं अन्य कुछ इनका जीव से सम्बन्ध नहीं होता। अगले ही सूत्र में कहा है- **उभयव्यामोहात् तत्सिद्धेः।।** वेदान्त ४.३.५

जीव की इस अवस्था में गमगागमन करते हुए व्यामोह की दशा होती है। उसको इन साधनों का कुछ ज्ञान नहीं होता। वह तो परमात्मा की व्यवस्था के आधीन रहता है।

यहाँ एक विशेष बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि जीव के पूर्व-शरीर को छोड़कर निकलकर इन तत्त्वों में जाने को शास्त्र की परिभाषा में आरोह=आरोहण कहा जाता है अर्थात् वह आकाश में चढ़ रहा है। जब उसके सूक्ष्म शरीर और पूर्व स्थूल शरीर को मिलाने वाली कड़ियाँ टूटती हैं तब आरोहण काल माना जाता है। इसके सम्बन्ध में टूटने और जीव को अगले स्थूल शरीर धारण करने और सूक्ष्म शरीर का उससे सम्बन्ध होने तक अवरोह= अवरोहण काल माना जाता है। इस आरोहण और अवरोहण प्रक्रिया का उपनिषदों तथा वेदान्त दर्शन में विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। उस सबका उल्लेख इस छोटे से लेख में करना सम्भव नहीं। जिज्ञासु सज्जन उन-उन शास्त्रों का स्वाध्याय कर के यथावृत का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ तक पूर्व शरीर से जीव के उत्क्रमण= बाहर निकल कर वायु आदि पदार्थों में भ्रमण करने का उल्लेख है। यह भ्रमण निष्प्रयोजन नहीं है, अपितु परमात्मा की व्यवस्थापूर्वक स्थूल शरीर के साथ जो भौतिक सम्पर्क था, उसको छोड़ना होता है। फिर अगले शरीर के स्थूल शरीर के साथ सूक्ष्म शरीर का इन्हीं तत्त्वों से संयोग होना है। इसी कारण यह भ्रमण काल माना जाता है। जीवात्मा को इस काल का कुछ बोध नहीं है, यह तो वेद से ही जाना जा सकता है और तदनुसार आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय से। जब अगले शरीर के धारण करने के लिये जीव अवरोहण करता है तब भी इन्हीं वायु आदि पदार्थों के द्वारा ही ईश्वर उसको पहुँचाता है।

अब विचारना यह है कि जीव का जो यह आरोह-अवरोह काल है अर्थात् एक शरीर को छोड़कर वायु आदि पदार्थों में भ्रमण करके दूसरे शरीर में जाना है-इसमें कितना समय लगता है- **नातिचिरेण विशेषात्।।** वेदान्ते ३-१-२३

शास्त्र के विशेष वचन से पता चलता है कि इसका समय 'अति चिर'=बहुत देर 'न' नहीं है। थोड़ा ही काल लगता है।

चरक शास्त्र में लिखा है- **देहग्रहणे प्रवर्त्तमानः पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते ततः क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्यवादिकाँश्च चतुरः सर्वमपितु खल्वेतदुणोपादानमणुना कालेन भवति।** शारी. ४-८

अर्थात् देहग्रहण में प्रवर्त्तमान पहिले आकाश का ही ग्रहण होता है फिर क्रम से जिन धातुओं के गुण प्रकट होने वाले वायु आदि चारों भूतों का यह सब कुछ ग्रहण अति सूक्ष्मकाल में ही हो जाता है। अर्थात् इनमें अधिक काल नहीं लगता।

ऋषि दयानन्द यजुर्वेद अध्याय ३९ के छठे मन्त्र के भावार्थ में लिखते हैं-

''हे मनुष्यो! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्यप्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं।''

अब प्रश्न यह है, क्या सब जीवों के भ्रमण का काल एक समान ही अत्यल्प होता है? इसका उत्तर यह है कि कुछ जीवात्मा अपने अपने कर्मों के अनुसार इस भ्रमण काल में अनुशयी रूप से अनेक पदार्थों में होते हुए माता के गर्भ में पहुंचते हैं। कुछ अपने कर्मानुसार शीघ्र माता या पिता के शरीर में जलादि के द्वारा पहुँच जाते हैं। अतः सबका भ्रमणकाल एक समान नहीं। हाँ, एक समता यह है कि यह भ्रमणकाल बहुत थोड़ा होता है, जैसे कि हम ऊपर लिख चुके हैं।

जो जीवात्मा पुनः जन्म धारण न करके मुक्ति को प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन इस लेख में नहीं किया गया है।

इस लेख से स्वाध्यायशील बन्धुओं को अनेक प्रकार की जिज्ञासा और संशय उत्पन्न होंगे। यह अच्छा लक्षण है, परन्तु अपनी जिज्ञासा की पूर्ति और सन्देहों की निवृत्ति के लिये वेदान्त दर्शन और तत्सम्बन्धी उपनिषदों का पारायण करना चाहिये। सामान्य प्रश्नोत्तर रूप से उस गम्भीर समस्या का एकमात्र उपाय स्वाध्याय ही है।

इस विषय के अनेक अवान्तर प्रकरण शास्त्रों में वर्णित हैं, हमने उनको इसलिये नहीं लिखा कि इस प्रकार पूरा ग्रन्थ बन जाता। हमने जिज्ञासु बन्धुओं के लिये एक मार्ग रखा है, जिस पर चलकर वास्तविक तत्त्व को समझा जा सकता है, हमारा यत्न तो केवल प्रेरणा देने का ही है।

२७ अगस्त पुण्यतिथि पर विशेष...

श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती

आनन्ददेव शास्त्री

श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती का जन्म उस समय के रोहतक जिले के झज्जर तहसील के बरहाणा (गूगनाण) ग्राम में विजयादशमी के दिन सम्वत् १९५७ तदनुसार सन् १९०० ई. में हुआ। आपके पिता जी का नाम श्री प्रीतसिंह तथा आपकी माता जी का नाम श्रीमती भामकौर था।

आपके पिता श्री प्रीतसिंह जी जवानी में, प. बंगाल कैवेलरी (रिसाला) में घुड़सवार सेना में भर्ती हो गये थे। उन्होंने सेना में उर्दू तथा अंग्रेजी का सामान्य ज्ञान प्राप्त किया तथा तीव्र बुद्धि होने के कारण सिग्नल कोर में छाँट लिये गये। रुग्ण होने के कारण सेना से पेंशन लेकर सन् १८८९ में घर लौट आए। आपने घर आकर आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया तथा अच्छे वैद्य बन गये। आपने ''नाड़ी विचार'' नामक पुस्तक भी लिखी।

बालक जगदेव की आरम्भिक शिक्षा गाँव के स्कूल में हुई। उन दिनों बरहाणा में कोई स्कूल न था। आपके पिताजी ने गाँव वालों के विरोध के बावजूद गाँव में कच्ची चौपाल में प्राथमिक स्कूल खुलवाया था। आपने मिडिल के वजीफे की परीक्षा झज्जर से उत्तीर्ण की तथा २ रु. वजीफा मिलने लगा। स्मरण रहे उस समय दो रुपये की बड़ी कीमत थी। आपने मिडिल परीक्षा बेरी के स्कूल से प्राप्त की। मैट्रिक परीक्षा आपने जाट हाई स्कूल रोहतक से उत्तीर्ण की। उस समय जाट स्कूल का वातावरण गुरुकुलों जैसा ही था। स्कूल में प्रतिदिन सन्ध्या-हवन होता था।

आर्यसमाज में दीक्षा- उन दिनों आर्यसमाज का प्रचार बड़े जोर-शोर से चल रहा था। उत्सवों में पौराणिकों से शास्त्रार्थ भी होते थे। आप भी छारा तथा डीघल गाँवों के उत्सवों पर पिताजी के साथ जाते थे। बाद में एक दिन बरहाणा में भी आर्यसमाज का प्रचार हुआ तथा बालक जगदेव को यज्ञोपवीत प्रदान किया गया। श्री प्रीतसिंह ने तभी गाँव में आर्यसमाज स्थापित कराया। श्री प्रीतसिंह प्रधान तथा श्री फूलसिंह मन्त्री चुने गये।

विवाह- सन् १९१६ ई. में जब आप हाईस्कूल में पढ़ रहे थे, आपकी माता जी का देहान्त हो गया। अत: १६ वर्ष की आयु में जगदेव सिंह का विवाह बिरहोड गाँव की लड़की नानवी देवी के साथ कर दिया गया।

सेना में भर्ती- हाईस्कूल की शिक्षा के उपरान्त श्री जगदेवसिंह के मन में सेवा में जाने की इच्छा हुई, अत: आप छोछी गाँव के हवलदार चन्दगीराम के साथ जाकर पेशावर (अब पाकिस्तान) में ३५ सिक्ख रेजिमेन्ट के अन्तर्गत जाट कम्पनी में भर्ती हो गये। उन दिनों सरकार आर्यसमाजियों से बड़ी चौंकती थी, अत: उनके विषय में विशेष पूछताछ होती थी। अत: आपसे सम्बन्धित पूछताछ में डीघल निवासी जेलदार मनसाराम को यह पता होते हुए कि जगदेव आर्यसमाजी है फिर भी कह दिया कि यह आर्यसमाजी नहीं है।

सेना में शिक्षा-कार्य- उस समय सैनिक का वेतन ११ रु. होता था। ५०रु. भर्ती पर इनाम भी दिया जाता था। श्री जगदेव सिंह सिपाहियों को अंग्रेजी सिखाने लगे, अत: सी.ओ. ने प्रसन्न होकर आपको ३ रु. भत्ता देना प्रारम्भ कर दिया। फिर आप सैनिकों के घर पत्र भी लिखने लगे, अत: आपका भत्ता ७ रु. कर दिया गया। सैनिकों को अंग्रेजी पढ़ाने के कारण आपका भत्ता ३० रु. कर दिया गया।

अद्‌भुत स्मृति- ३५ सिक्ख रेजिमेन्ट की जाट कम्पनी को आगरा जाना था। उस कम्पनी में ३७६ सैनिक तथा अधिकारी व्यक्ति थे। श्री जगदेव सिंह को उन सब के नाम तथा पद स्मरण थे, क्योंकि आपको उन सभी से काम पड़ता था। जब पलटन आगरा पहुँची तो नाम सूची रेल के डिब्बे में ही छूट गई। अधिकारियों ने सोचा कि जब पेशावर से चले थे तब यह सूची वहीं छूट गई होगी, अत: वहाँ से दूसरी सूची मँगाने पर विचार हुआ। तभी जगदेव सिंह ने कम्पनी कमान्डर से कहा-कि मैं वह सूची ३ घन्टे में बना दूँगा। कम्पनी कमान्डर के कहने पर आपने वह सूची ढाई घन्टे में तैयार कर दी। असली कॉपी सफाई करते समय रेल के डिब्बे में भी मिल गई। रेल अधिकारियों ने वह सूची पुलिस को भेजी तथा एक इन्सपेक्टर उस कॉपी को लेकर सेना के कार्यालय में दे गया। जब दोनों सूचियों का मिलान किया गया तो दोनों सूची अक्षरश: समान थीं। कर्नल साहब ने प्रसन्न हो आपको क्वाटर मास्टर का हेडक्लर्क नियुक्त कर दिया। पन्द्रह दिन के बाद ही आपको लान्सनायक बना दिया तथा आपका वेतन तथा भत्ता भी बढ़ा दिया गया।

मांस भक्षण का विरोध- जब श्री जगदेव डोरा कैम्प (अरब) में युद्ध के मोर्चे पर थे, तब आदेश निकला कि सभी जवानों को मांस खिलाया जाये। भारतीय अधिकारी अंग्रेज

अधिकारियों से दबते थे, उन्होंने सैनिकों पर मांस खाने के लिये दबाव देना शुरू किया। श्री जगदेव सिंह के नेतृत्व में आर्यसमाजी जवानों ने मांस-भक्षण का विरोध प्रारम्भ किया। तब सभी आर्यसमाजी सैनिकों को बन्दी बनाकर एक अंग्रेज ब्रिगेडियर के आधीन कोर्टमार्शल बिठाया गया। तब ब्रिगेडियर ने सैनिकों से कहा कि बाइबिल को चूमकर शपथ लो। तब श्री जगदेव ने कहा-यह तो ईसाइयों की पुस्तक है, मैं इसे नहीं चूम सकता। हमारी धर्म पुस्तक वेद है। वहाँ वेद उपलब्ध नहीं था। तब विवश हो ब्रिगेडियर ने कहा-''कि शपथ लो मैं जो कुछ कहूँगा सच ही कहूँगा। तब श्री जगदेव ने वैसा ही कहा तथा कहा कि मांस खाना हमारे धर्म के विरुद्ध है, अत: हम मांस नहीं खायेंगें। इसके अतिरिक्त आपने ब्रिगेडियर को ब्रिटिश एक्ट की कॉपी निकालकर दिखाई, जिसमें लिखा हुआ था कि किसी भी धर्म में हस्तक्षेप तथा जबरदस्ती नहीं की जायेगी।'' तब उस अंग्रेज ने तुरन्त कोर्टमार्शल वापिस ले लिया तथा आदेश दिया कि किसी को भी मांस खाने को विवश न किया जाय।

सत्यार्थप्रकाश से प्रेम- श्री जगदेव सिंह को फिर डोरा कैम्प में भेज दिया गया। वहाँ आर्यसमाजी सैनिकों ने लकड़ी का आर्यसमाज मन्दिर बनाया। वहाँ भी आप प्रतिदिन हवन करते तथा सत्यार्थप्रकाश सुनाया करते। आप जब भारत से डोरा कैम्प गये तब सत्यार्थप्रकाश साथ लेकर गये थे। एक बार बुद्धू लोगों ने मार्ग में रेजिमेन्ट का राशन लूट लिया तथा कुछ दिन ऑपरेशन स्केल पर राशन मिला, तब आपने राशन का कुछ हिस्सा छोड़ दिया, किन्तु सत्यार्थप्रकाश को साथ रखा। कुछ लोगों ने अफसरों से आपके सत्यार्थप्रकाश रखने की शिकायत की, तब आपने कहा कि सत्यार्थप्रकाश तो सरकार से रजिस्टर्ड है। इस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, तब तो बहुत से लोगों ने भारत से सत्यार्थप्रकाश मँगाये।

कम्पनी में वैदिक धर्म की जय- आपकी कम्पनी अरब से बम्बई बन्दरगाह पर पहुँची। वहाँ से आगरा छावनी स्टेशन पर पहुँची। रेजिमेन्ट में पाँच कम्पनियाँ थी। पाँचों को आदेश हुआ कि आगे-आगे कम्पनी हैडक्वाटर मास्टर मार्च करेंगें। श्री जगदेव सिंह अपनी कम्पनी में आगे चल रहे थे। सभी कम्पनियों के आर्यसमाजियों ने निश्चय किया कि सभी बाजार में से आर्यसमाज तथा वैदिक धर्म की जय बोलते हुए चलें। तब सभी कम्पनियों के जवान बाजार में उपरोक्त नारे लगाते हुए चल रहे थे। यह दृश्य जनता की भीड़ आश्चर्य से देख रही थी। एक हथियारबन्द सेना का ऐसा प्रदर्शन अंग्रेज शासन के उस युग में साधारण बात न थी। यह इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी। यह घटना प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त की है। युद्ध समाप्ति पर इस रेजिमेन्ट को तोड़ दिया गया। तब कर्नल हार्डी ने आप से कहा- मैं तुम्हें सिविल में अच्छी-सी नौकरी दिलवा दूँगा। किन्तु आपने आगे नौकरी न करने का निश्चय किया। तब आप गुरुकुल तथा आर्यसमाज के उत्सवों पर जाने लगे तथा गुरुकुलों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने लगे, जिससे कि संस्कृत भाषा का अध्ययन किया जा सके।

संस्कृत भाषा का अध्ययन- आप १९२२ में गुरुकुल मटिण्डू के उत्सव पर गये तथा वहाँ दो महीने नि:शुल्क सेवा की। तत्पश्चात् आप संस्कृत सीखने के लिये २०रु. मासिक पर वहाँ अध्यापन कार्य करने लगे। आप पं. शान्तिस्वरूप से संस्कृत सीखने लगे। आप एक वर्ष के अन्दर पंजाब विश्वविद्यालय की प्राज्ञ परीक्षा में ५२०/६०० अंक प्राप्त करके उत्तीर्ण हुए। आपने विश्वविद्यालय के पुराने रिकॉर्ड तोड़ दिये। अगले वर्ष विशारद परीक्षा में ४५८/६०० अंक प्राप्त कर प्रथम श्रेणी में उत्तीण हुए।

सिद्धान्ती उपनाम- आपने दो वर्ष लगाकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक-विद्यालय से सिद्धान्तभूषण तथा सिद्धान्त विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। ताहौर में ही आपने स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को अपना गुरु बनाया। यहीं से आपने सिद्धान्ती उपनाम धारण किया।

मटिण्डू गुरुकुल की सेवा- प्रारम्भ में आप गुरुकुल मटिण्डू दो महीने के लिये गये थे, किन्तु सभी कार्यों में दक्षता के कारण चौ. पीरूसिंह ने आपको वहीं रख लिया। चौ. पीरूसिंह का स्वर्गवास होने पर आपने बड़ी दक्षता से गुरुकुल का संचालन किया। आप १९२२ से १९२९ तक गुरुकुल मटिण्डू में सेवा के बाद संस्कृत महाविद्यालय किरठल (मेरठ) चले गये।

जेलदार का घर- जिन दिनों आप गुरुकुल मटिण्डू में सेवा करते थे, उस समय एक दिन आप सिलाना (सोनीपत) में प्रचार के लिये गये। गाँव में जेलदार चौ. अमरसिंह आर्यसमाजी थे, किन्तु उनकी पत्नी उपदेशकों के साथ बड़ा रूखा व्यवहार करती थी। भोजन की पूछने पर सिद्धान्ती जी ने हाँ कर दी। तब जेलदार ने पत्नी की दुष्टता की बात बताई। इस पर सिद्धान्ती जी बोले-''जेलदार साहब यदि आप नाराज न हो तो मैं आपके घर के इस रोग का इलाज कर देता हूँ। चौ. अमरसिंह ने स्वीकृति दे दी। जब भोजन का समय आया तब जेलदार की पत्नी ने सूखी रोटी तथा प्याज, पीत्तल की थाली में सिद्धान्ती जी के सामने रख दिये। तब सिद्धान्ती जी ने वह थाली फेंक मारी तथा बोले- ''जेलदार साहब के घर में यह भोजन? मैं आर्यसमाज का उपदेशक हूँ, मैं गाँव-गाँव जाकर प्रचार करूंगा कि जेलदार के घर में खाने को कुछ भी नहीं है। यह कहकर सिद्धान्ती जी उठकर चले पड़े। तब जेलदार साहब की पत्नी ने भागकर दोनों

हाथ दरवाजे पर लगाकर रास्ता रोक लिया तथा क्षमा माँगी। तब जेलदारनी ने छत पर चौबारे में खाट पर सुन्दर दरी बिछाई तथा कहा मैं अभी खाना लेकर आती हूँ। तब वह सिद्धान्ती जी के लिये घी, बूरा तथा गेहूँ की रोटी लेकर आई। इसके बाद जेलदारनी का व्यवहार सदा के लिये ठीक हो गया।''

पुत्र वियोग- आप सेना से १९२२ में वापिस आए थे। १९२६ ई. में आपके घर पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। जिसका नाम महेन्द्र रखा गया, किन्तु डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही वह चल बसा। इस घटना से सिद्धान्ती जी को बड़ा धक्का लगा तथा वैराग्य उत्पन्न हो गया।

पत्नी त्याग- पुत्र वियोग के बाद आपने पत्नी से सलाह करके घर ही त्याग दिया।

आर्य महाविद्यालय किरठल (मेरठ) गमन- जब आप मटिण्डू में पढ़ाते थे, उस समय आपके साथ श्री रिसाल सिंह (किरठल) के भी पढ़ाते थे। उनके भाई किरठल महाविद्यालय के मन्त्री थे। मन्त्री जी ने अपने भाई रिसाल सिंह के द्वारा सिद्धान्ती जी को किरठल पधारने का निमन्त्रण भेजा। तब आप ने १९२९ ई. में किरठल गुरुकु ल को संभाला। उस समय किरठल गुरुकुल की हालत कमजोर थी। आपकी पासबुक में २०० रु. थे। आपने प्रारम्भ में उन्हीं रुपयों से काम चलाया। पढ़ाने तथा प्रबन्ध आदि भी सभी जिम्मेदारी आप पर ही थी। आपने गुरुकुल के भवन पक्के बनवाए। विद्वान् अध्यापक बुलवााए, जिससे उस संस्था से श्री रघुवीरसिंह शास्त्री जैसे विद्वान् तथा धाराप्रवाह संस्कृतवक्ता उत्पन्न हुए। शास्त्री जी लोकसभा के सदस्य भी बने थे।

विषपान- किरठल में रहते हुए षड्यन्त्रकारी लोगों ने आपको संखिया जहर पिला दिया, किन्तु संखिया बारीक पिसा न होने के कारण तथा अच्छे वैद्य की चिकित्सा के कारण आपके प्राण बच गये, किन्तु अधिक गर्म होने के कारण आपको बवासीर हो गया।

सीकर (शेखावाटी) प्रजापति यज्ञ- राजस्थान के जयपुर राज्य के अधीन सीकर, जिले के अन्तर्गत शेखावाटी इलाका है। इसका शासक राजराजा कल्याणसिंह था। इस इलाके में जाटों को अछूत माना जाता था। जाटों को पानी बांस की नली के द्वारा पिलाया जाता था। यहाँ के जाट पिछड़े हुए थे। यहाँ जाटों के ५०० गाँव थे। इन गाँवों में कोई प्राइमरी स्कूल नहीं था। रजवाड़ों का शासन ही इन गाँवों में पिछड़ेपन का कारण था। स्त्रियाँ सोने के जेवर नहीं पहन सकती थीं। दूल्हा घोड़ी पर नहीं चढ़ सकता था। जाटों के घर लड़का होने पर ठाकुर को एक रुपया टैक्स देना पड़ता था तथा ठाकुर के घर लड़का पैदा होने पर भी जाटों को ही एक रुपया टैक्स देना पड़ता था। सब पशुओं पर भी टैक्स देना पड़ता था। यदि कोई ज़बान खोलने की हिम्मत करता तो राजा के गुण्डे उसे पीटते तथा लूट लेते थे।

उत्तरप्रदेश तथा हरयाणा में तो जाटों में जागृति आ चुकी थी, अत: जाट महासभा ने उत्तरप्रदेश तथा हरियाणा से कार्यकर्त्ता सीकर भेजे। वैसे तो सीकर रियासत में कोई जलसा नहीं हो सकता था, किन्तु यज्ञ धार्मिक कार्य होने के कारण यज्ञ की स्वीकृति मिल गई। सब गाँवों से, प्रत्येक घर से आटा तथी घी इकट्ठा किया गया। श्री हुकम सिंह रईस (मथुरा) को इस यज्ञ का यज्ञपति बनाया गया। आप सार्वदेशिक तथा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं में प्रधान रह चुके थे। यज्ञ के संयोजकों ने श्री सिद्धान्ती जी के पास यज्ञ करवाने का निमन्त्रण भेजा। सिद्धान्ती जी ने बीस ब्रह्मचारी यज्ञ करवाने के लिये भेजे। ब्रह्मचारियों का स्टेशन पर स्वागत करने गाँधी जी के साथी श्री जमनालाल बजाज स्वयं उपस्थित हुए। हजारों की भीड़ ने ब्रह्मचारियों का स्वागत किया। ब्रह्मचारियों से कह दिया गया था कि यदि कोई पूछे तो बताना कि बनारस से पंडित आए हैं। यज्ञ मण्डप बड़ा विशाल बनाया गया था। इसके दो दरवाजे थे। एक पर पं. शान्तिस्वरूप स्वयं तथा दूसरे दरवाजे पर पं. रघुवीरसिंह शास्त्री उपस्थित रहते थे। दोनों व्यक्ति केवल संस्कृत में ही बोलते थे। सभी जगह शोर मच गया कि एक १५ वर्ष का लड़का (रघुवीर सिंह शास्त्री) केवल संस्कृत में बोलता है। इस बात की वहाँ के पंडितों पर बड़ी धाक जमी तथा उनका अभिमान चूर हो गया तथा वे वहाँ आकर नम्रता से बात करने लगे। इस यज्ञ में चौ. छोटूराम आदि बड़े-बड़े नेता पधारे थे। इस यज्ञ का बहुत अच्छा प्रभाव हुआ तथा वहाँ आर्यसमाज का प्रचार बढ़ा तथा लोगों में जागृति आई।

हैदराबाद सत्याग्रह- हैदराबाद के अत्याचारी निजाम ने हिन्दुओं पर बड़े अत्याचार किये तथा उनके पूजापाठ, हवन-प्रचार, शादी में फेरे करवाने आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। उसके विरोध में आर्यसमाज ने १९३९ में सत्याग्रह किया था। यह सत्याग्रह कई महीनों तक चला। सत्याग्रहियों को पीटना तथा सीमेन्ट मिला खाना देना साधारण बात थी। इसमें दर्जनों आर्यवीर शहीद हुए। श्री सिद्धान्ती जी ने भी एक बड़े जत्थे के साथ तुलजापुर के कठिन मोर्चे पर सत्याग्रह किया। सिद्धान्ती जी को १५ लाठियाँ मारी गई थीं। आपको छ: महीने की कठिन जेल हुई। अन्त में निजाम को झुकना पड़ा। सत्याग्रह से आकर सिद्धान्ती जी भयंकर रुग्ण हो गये तथा बड़ी कठिनाई से उनकी जान बची।

भारत छोड़ो आन्दोलन में भाग- आपने १९४२ के **भारत**

छोड़ो आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया। १९४५ में आप किरठल छोड़कर दिल्ली आ गए।

सम्राट पत्र (साप्ताहिक)- दिल्ली में पहाड़ी धीरज में आपको रईस उमराव सिंह की धर्मशाला मिल गई। यहाँ से सम्राट नाम का पत्र निकाला गया। इस पत्र में बड़े अच्छे लेख तथा समाचार होते थे। १९४८ में आपने जैसे-तैसे पैसे जुटाकर सम्राट प्रेस लगाया। इस प्रेस में आपके शिष्य श्री रघुवीरसिंह शास्त्री तथा श्री नारायण भी सम्मिलित थे।

१९४७ के उपद्रव- पहाड़ी धीरज के पास के इलाके मुस्लिम बहुल हैं। वहाँ के हिन्दुओं को सदा ही मुसलमानों के आक्रमण का भय रहता था। वहाँ सिद्धान्ती जी के जानकार डी.सी. श्री रंधावा थे। आपने उनसे मिलकर बन्दूक का लाइसेन्स प्राप्त किया। १९४७ के दंगों में इसी बन्दूक से सिद्धान्ती जी छत पर बैठकर हिन्दुओं की रक्षा करते तथा हिन्दुओं की हिम्मत बंधाते रहे।

गुरुकुल झज्जर का पुनरुद्धार- पुराने कार्यकर्त्ताओं के देहान्त के बाद गुरुकुल झज्जर की स्थिति दयनीय हो गई थी। तब १९४२ में श्री सिद्धान्ती जी चौ. छोटूराम (खरहर) नरेला से ब्रह्मचारी भगवानदेव (स्वामी ओमानन्द) जी को झज्जर लाए तथा आचार्य जी के अथक प्रयत्न से गुरुकुल झज्जर का पुनरुद्धार हुआ।

सर्वखाप पंचायत के प्रधान- १९५० में सोरों (मुजफ्फरनगर) में सर्वखाप पंचात बुलाई गई। जिसमें ५० हजार लोग उपस्थित हुए। इस पंचायत का आपको सर्वसम्मति से प्रधान चुना गया। इस पंचायत ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध निर्णय लिये तथा बड़े-बड़े सुधार किये।

आर्य प्रतिनिधि सभा में प्रवेश- स्वामी आत्मानन्द जी की विशेष प्रेरणा से आपने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में प्रवेश किया तथा सभा के मन्त्री तथा प्रधान भी रहे।

गुरुकुल कांगड़ी के कुलपति- क्योंकि सभा का मन्त्री ही गुरुकुल कांगड़ी का कुलपति होता है, अत: आप गुरुकुल कांगड़ी के कुलपति भी रहे।

पंजाब का हिन्दी रक्षा सत्याग्रह- पंजाब के मुख्यमन्त्री सरदार प्रताप सिंह कैरों ने हरियाणा पर जबरदस्ती पंजाबी लाद दी थी, उसके विरोध में आर्यसमाज ने १९५७ में आन्दोलन चलाया। यह आन्दोलन मई से दिसम्बर तक चला। पहले तो सिद्धान्ती जी भूमिगत रहकर कार्य करते रहे तथा बाद में उन्होंने दिल्ली के गाँधी ग्राउण्ड में गिरफ्तारी की घोषणा की तथा भरी सभा में पुलिस के पहरे के रहते प्रकट हुए तथा भाषण एवं गिरफ्तारी दी तथा बोस्टन जेल (हिसार) में आन्दोलन समाप्ति तक जेल में ही रहे।

हरियाणा लोक समिति- हिन्दी आन्दोलन में प्रसिद्ध आर्य राजनेता प्रो. शेरसिंह ने कांग्रेस छोड़कर सत्याग्रह किया था, अत: १९६२ के चुनाव में प्रो. साहब ने हरियाणा लोक समिति नामक पार्टी बनाई तथा चुनाव लड़ काँग्रेस के विरुद्ध बहुत सी सीटों पर विजयी रहे। आपके प्रतिद्वन्द्वी श्री प्रताप सिंह दौलता ने आपके विरुद्ध आरोप लगाते हुए जिला न्यायालय में मुकद्दमा डाल दिया। मुकद्दमें में निचली अदालत ने आपको ही विजयी घोषित कर दिया, किन्तु प्रताप सिंह उच्च न्यायालय में चला गया तथा उच्च न्यायालय ने सिद्धान्ती जी के विरुद्ध निर्णय दिया। तब सिद्धान्ती जी सर्वोच्च न्यायालय में चले गये। सर्वोच्च न्यायालय में आचार्य भगवानदेव (स्वामी ओमानन्द) की गवाही हुई, आचार्य जी अपनी जीप पर सदा ओम् का झण्डा ही लगाते थे। प्रताप सिंह का आरोप था कि सिद्धान्ती जी ने ओम् के झण्डे का दुरुपयोग कर लोगों की धार्मिक भावना भड़काकर विजय प्राप्त की है। आचार्य भगवान देव जी ने कहा कि ओम का झण्डा लगाने का मनुष्य मात्र को अधिकार है तथा मैं ओम् का झण्डा ही गाड़ी पर लगाता हूँ, अभी भी मेरी गाड़ी पर सामने ओम् का झण्डा लगा हुआ है। इस पर सर्वोच्च न्यायालय ने सिद्धान्ती जी को विजयी घोषित किया। स्मरण रहे कि इस चुनाव में रात को सिद्धान्ती जी तथा प्रो. शेरसिंह जी की गाड़ी गुरुकुल में खड़ी होती थी। सवेरे प्रचार का सामान लेकर जाती थी।

इन दिनों लेखक गुरुकुल झज्जर में ही व्याकरणाचार्य कक्षा में पढ़ता था।

हरियाणा का निर्माण- हरियाणा के पृथक् निर्माण में भी आपका, स्वामी ओमानन्द जी, प्रो. शेरसिंह जी तथा चौ. देवीलाल जी का बड़ा सहयोग रहा। तथा चण्डीगढ़ आन्दोलन में भी आप अग्रसर रहे।

स्वर्गवास- २७ अगस्त १९७९ को दोपहर बाद एक बजे आपका स्वर्गवास हुआ। दिल्ली के निगमबोध घाट पर हजारों आर्यों की उपस्थिति में वैदिकरीति से आपका अन्तिम संस्कार किया गया।

श्रद्धाञ्जलि सभा- ९ सिम्बर १९७९ को आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक दयानन्द मठ रोहतक में हुई, जिसमें सिद्धान्ती जी को भावभीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई। यह सभा स्वामी ओमानन्द जी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें आपका स्मारक बनाने का निर्णय हुआ। इस भव्य भवन का नाम सिद्धान्ती भवन रखा गया। ऐसे निडर वीर, कर्मठ, सच्चे, विद्वान् पं. जगदेव सिंह सिद्धान्ती जी को शतश: नमन।